श्रीविद्यामन्त्रभाष्यम्

(हिन्दीव्याख्यासहितम्)

व्याख्याकारः

आचार्य रविशङ्कर द्विवेदिनः

ज्योतिष्पीठ पण्डित

शुभाशीर्वाद

अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

श्रीविद्यामन्त्रभाष्यम्

व्याख्याकारः
आचार्य रविशङ्कर द्विवेदः
ज्योतिष्पीठ-पण्डितः
प्राचार्यः
श्री ज्योतिरीश्वर ऋषिकुल संस्कृत महाविद्यालय
'सरस्वती सदनम्', झोतेश्वर, परमहंसीगंगा आश्रम क्षेत्र,
नरसिंहपुर (म.प्र.)
दूरभाष - 07794-285204

प्रकाशक
स्वामी सदानन्द सरस्वती
सचिव, **श्रीराजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी विद्यापीठ** मंदिर
परमहंसी गंगा आश्रम, ज्योतिरीश्वर (झौंतेश्वर), श्रीधाम, नरसिंहपुर (म.प्र.)
दूरभाष : 07794-285210

अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

ज्योतिर्मठ
तोटकाचार्य गुफा, जोशीमठ, उत्तराखण्ड
दूरभाष : 01389-222185

श्रीशारदापीठम्
द्वारका, देवभूमि द्वारका, गुजरात
दूरभाष : 02892-235139

क्रमांक

दिनांक :
स्थल :

।। शुभाशीर्वचांसि ।।

परम दुर्लभ वेदप्रोक्त पञ्चदशी महामन्त्र की महिमा शास्त्रों में तथा गुरुपरम्परा में शिष्य को अनन्त पुण्यों के फलस्वरूप अवगत होती है। इस महामन्त्र की दुर्लभता के विषय में कहा है

यस्यास्ति चरमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम् ।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ।।

इस पञ्चदशाक्षरी महामन्त्र का भाष्य स्वामीश्रीकरपात्री जी ने किया था। उन्होंने अनेक पद्धति ग्रन्थों का अभिप्राय इस भाष्यग्रन्थ में विवेचित किया है। जिसके परिचय होने पर जिज्ञासुओं में उत्साह वृद्धि होगी । इसका हिन्दी में अनुवाद (श्रीविद्या मन्त्रभाष्य, हिन्दी) ज्योतिष्पीठपण्डित रविशङ्कर द्विवेदी "शास्त्री" ने किया है । यह मन्त्रभाष्य जिज्ञासुओं और तन्त्रप्रेमी व्यक्तियों को पञ्चदशीमन्त्र की जिज्ञासा और महिमा ज्ञान कराने में सहायक होगा । इसके लिये हमारे भूरिशः शुभाशीर्वाद हैं।

१०/८/२०१६
श्री शङ्कराचार्य मठ, ज्ञानलोक कॉलोनी,
कनखल, हरिद्वार (उ.ख.)

शुभैषी

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
जगद्गुरु शङ्कराचार्य
ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर

श्री द्वारका

शारदापीठम्

प्रेषक : सचिव,

पू.पाद जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज

द्वारका • गुजरात • भारत

टेलीफोन : (02892)234064, 235139 फैक्स : 234457

॥ शुभमस्मदीयम् ॥

"**निजारुणप्रभापूरमज्ज्द्ब्रह्माण्डमण्डला**" अपनी रक्तशुक्ल प्रभा से समस्त ब्रह्माण्ड को स्नान कराने वाली माँ जगदम्बा, भगवती-राजराजेश्वरी-त्रिपुरसुन्दरी के उपासकों के लिए माँ का बीजमन्त्र अर्थात् पञ्चदशाक्षरी मन्त्र ही मूलाधार है । तन्त्रशास्त्र में मन्त्र और देवता में परस्पर अभेद होता है। अत: मन्त्रजप और देवता का चिंतन परस्पर निबद्ध है ।

पीठद्वयाधीश्वर, भगवती के ही स्वरूपभूत ,पूज्यपाद महाराजश्री ने भगवती राजराजेश्वरी जैसी परमगुह्य महाविद्या जो योगियों के द्वारा ही अधिगम्य है को आत्मसात् कर जनसामान्य को भी उस महाविद्या के तत्व से अवगत कराया, निश्चित ही यह आचार्य की गरिमा के अनुरूप कार्य है । भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य इन देवी के आराधक थे और चतुराम्नाय पीठों में श्रीयन्त्र की आराधना आज भी प्रचलित है। वेदों में, आगमों में, उपनिषदों में इन भगवती का व्यापक वर्णन प्राप्त होता है । और निश्चित ही जितनी भी उपासना पद्धतियाँ भारत में प्रचलित हैं उन सभी में जो विशिष्ट नवावरण, पूजनक्रम ऐश्वर्याधिष्ठात्री, षोडशी महाविद्या का है वैसा उपासना क्रम कहीं नहीं । हम भारतवासी सौभाग्यशाली हैं कि यहाँ अविच्छिन्न गुरुपरंपरा और इस परंपरा से प्राप्त ज्ञान,कर्म,उपासना का आश्रय लेकर ऐहिक,पारलौकिक एवं मोक्ष तक प्राप्त कर सकते हैं जैसा कि देवता भी कहते हैं।

पूज्यपाद महाराजश्री के आम्नाय पीठपण्डित आचार्य रविशङ्कर द्विवेदी शास्त्री ने पूज्य महाराजश्री की आज्ञा से पञ्चदशी महामन्त्रभाष्य का हिन्दी अनुवाद कर "**श्रीविद्यामन्त्र भाष्य**" पुस्तक लिखकर श्रीविद्यासाधकों पर उपकार किया है और निश्चित ही श्रीविद्या सम्प्रदाय में प्रचलित ग्रन्थों के मध्य एक बडे अभाव की पूर्त्ति की है। मन्त्रभाष्य के अनुवाद से सामान्य साधक भी इस महामन्त्र के परम ऐश्वर्य से परिचित हो सकेंगे और इसी अपेक्षा से शास्त्री जी का परिश्रम भी सार्थक होगा । माँ ललिताम्बा शास्त्री जी को अपनी कृपाकटाक्षकिरणों से प्रकाशित करती रहें एवं इसी तरह सारस्वत-साधना करते हुए लोकोपकारी कार्य आपके द्वारा होते रहें यह प्रार्थना महादेवी के पादपद्मों में समर्पित करते हैं।

शुभाकाङ्क्षी

स्वामी सदानन्द सरस्वती

द्वारका शारदापीठ

श्रावण शु.१५/ वि.२०७३

१७/ ०८/ २०१६

कनखल, हरिद्वार (उ.ख.)

भूमिका

भगवती त्रिपुराम्बा राजराजेश्वरी ललितामहात्रिपुरसुन्दरी श्रीमाता का मूलमन्त्र पञ्चदशी महामन्त्र परमदुर्लभ महामन्त्र है- उक्ति है ।

(यस्य च चरमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम्
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ।।)
यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम्
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ।।ल.त्रि.मा. उत्तरार्धे ८२।

इस दुर्लभता का अनुभव क्रमशः जिज्ञासु साधक को होता रहता है । श्रीसद्गुरु परम अनुग्रह से सुपरीक्षित शिष्य के अन्तर्जगत् में शक्तिपात पूर्वक उसके कर्णरन्ध्रमार्ग से इस अमोघ सुदुर्लभ महाविद्या प्रमुख समस्त मन्त्रसार पञ्चदशी महामन्त्र का प्रवेश कर देते हैं ।

इस महामन्त्र के अर्थों का चिन्तन प्रकरण ग्रन्थों में किया गया है, इस अर्थ चिन्तन के विषय में प्रसिद्ध पद्धति ग्रन्थ योगिनी हृदय है यह भगवती श्रीदेवी और भगवान् भैरव के संवाद रूप में है, इसमें संकेत पद्धति का विवेचन है । जिसमें तीन विभाग हैं -

परमाज्ञाधरो - अर्थात् निग्रहानुग्रहसामर्थ्यम् यद्वा भगवती त्रिपुराम्बा ही परमाज्ञा हैं। इनके अज्ञान से देवी रूप नहीं हो सकता-

(१) चक्रसंकेत, (२) मन्त्रसंकेत और (३) तृतीय पूजा संकेत ।

इन प्रकरणों के विवेचन आरम्भ में योगिनी हृदय में श्रीभैरव ने भगवती से संवाद करते हुए कहा- हे परमेश्वरि ! त्रिपुरादेवी के तीन संकेत हैं - प्रथम- चक्रसंकेत, दूसरा मन्त्रसंकेत और तीसरा पूजासंकेत। संकेत शब्द की व्याख्या दीपिकाकार ने इस प्रकार की है-श्लोक है-

चक्रसंकेतको मन्त्र पूजासंकेतकौ तथा ।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः संकेतः परमेश्वरि ।।६।।

व्याख्या में -यथा- संकेतवत् = संकेतकः = संकेतः समयः = उदाहरण

यह दिया है, कि जैसे नायक नायिका = मिलने के लिये साथ रहने के लिये स्थान और समय निश्चित करते हैं, उसी प्रकार इस अध्यात्मिक सामरस्य के लिये प्रकाश और विमर्श रूप शिवशक्ति किन स्थलों में अपरोक्ष हो सकते हैं, एतदर्थ यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र रूप चक्रसंकेत मन्त्रसंकेत और पूजासंकेत व्याख्यायित हुए हैं – श्रीभास्करराय ने संकेत का अर्थ किया है– शक्तिसमूहस्तस्य संकेतो रहस्यरूपम् ..त्रिषु "क" प्रत्ययस्त्वज्ञातार्थकः "इति इन तीन स्तंभों के आधार पर शिवशक्ति सामरस्य के रहस्यों का संकेत– इनके परिचय के बिना साधक श्रीविद्या में आज्ञाधर नहीं हो सकता ।

संकेत का अर्थ स्पष्ट रूप से यह किया गया है, कि श्रीचक्र के रूप का परिचय, तथा चक्र के आवरणों का, त्रिकोणों का, बिन्दु का परिचय दिया गया । इसमें जो महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, उनका परिचय होना आवश्यक है ।

मन्त्र संकेत में पञ्चदशी मन्त्र के मर्मस्थलों का परिचय अत्यावश्यक रूप से प्रतिपादित किया गया है, मुद्रा तथा आवरणों का सुन्दर परिचय और उनके ज्ञान का साधक पर प्रभाव व्यक्त किया गया है । मन्त्र के षड् अर्थ किए गए हैं । श्री अमृतानन्द योगी ने उनकी दीपिका टीका में व्याख्या की है ।

दूसरे व्याख्याकार श्री भास्करराय ने सेतुबंध टीका में तथा वरिवस्यारहस्य ग्रन्थ में अतिरिक्त आठ और मन्त्रार्थ व्यक्त किए हैं,·मन्त्र भाष्य में पूज्य करपात्री जी महाराज ने योगिनीहृदय, वरिवस्यारहस्य, स्वच्छन्द संग्रह, कामकला ग्रन्थों का सार निष्कर्ष स्पष्ट किया है ।

मन्त्रभाष्य में पूज्य करपात्री जी महाराज ने पद्धति ग्रन्थों में वर्णित सामरस्य भाव का सुबोध ढंग से व्यक्तीकरण किया है । गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनी–राशिरूपिणीम् देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् "इस श्लोक के व्याख्यान में भगवती के स्वरूपचिन्तन में प्रतिपादन तो है ही, भाष्य में ग्रन्थों में वर्णित इस रहस्य को और सुस्पष्ट कर दिया है । मन्त्र (पञ्चदशी) में, यन्त्र अर्थात् श्रीचक्र में, श्रीगुरु श्रीविग्रह में और साधक में भी घटित किया है । यही बात भगवान् श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य ने प्रसिद्ध "वेदपादस्तव" में कहा है – यथा–

साधकः सततङ्कुर्यादैक्यं श्रीचक्रदेहयोः ।
तथा देव्यात्मनोरैक्यं- एतावदनुशासनम् ।। श्लो. ९०।।
इसी विषय को दिव्यमङ्गला स्तोत्र में और स्पष्ट कहा है - यथा -
श्रीचक्रदेवी श्रीनाथस्वात्मनामैक्यमामृशन् ।
त्रैलोक्यमरुणं ध्यात्वा श्रीविद्यां यो जपेत्सुधीः ।।१०६।।
सयोगी कृतकृत्यश्च चराचरविभुर्भवेत् ।
सृष्टिस्थितिलयादीनां कृत्याकृत्य विभञ्जकः ।।१०७।

(दिव्यमंगला, नित्याराधनस्तोत्राणि से साभार)

इस प्रकार जो पद्धति ग्रन्थों में सरलता से दृष्टिपथ में तात्पर्य सहित अभिव्यक्त नहीं होता, वह पूज्य महाराज जी ने सुस्पष्ट कर दिया है, केवल विमर्शन करने की आवश्यकता है ।। मैंने जब ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्यानन्द जी की वेगपूर्ण प्रेरणा से प्रेरित होकर पूज्य महाराज जी (पू. शङ्कराचार्य जी) से इच्छा व्यक्त कर आज्ञा ली तो उन्होंने सावधान करते हुए प्रथम वाक्य बोला कि "महाराज ने बहुत ही गम्भीरता से भाष्य किया है ।" फिर उन्होंने कहा प्रयास करो। मैने यथाबुद्धि स्वभावानुसार परिढुण्ढन (पर्यन्वेषण) करते हुए यथा सामर्थ्य श्रीगुरुकृपाबल से शाब्दिक अनुवाद मात्र किया है । समर्थ अनुभवी मेरे इस बाल प्रयास को स्वीकार करते हुए अपने अनुभवों से मुझे अनुगृहीत करेंगे ।

इस क्षेत्र में जहाँ मुझे पूज्य महाराज जी ने सामने से स्थापित कर परमहंसी गङ्गा आश्रम क्षेत्र श्रीसरस्वती सदन ज्योतिरीश्वर महादेव की सन्निधि में संरक्षित कर यह देवदुर्लभ विद्या का बीजारोपण मेरे अन्तस्तल में किया है, गुरु शिष्य ज्ञानवंश की सनातन परम्परा से । अतः इस क्षेत्र में आप सभी सनातन महानुभावों से साग्रह सादर निवेदन है, यथावकाश यहाँ पधारें और आत्मानुभव से प्रसन्न हों ।

पूज्य श्रीस्वामी सदानन्द सरस्वती जी मुझे अपने इस प्रदत्त नाम और योग पट्ट (सरस्वती) से स्वयं संचालित होते हुए मुझे भी यत्किञ्चित् मधुरिमा दे देते हैं, क्यों देते हैं ? यह तो वे ही जानें, उन्होंने ही इस कार्य में आगे बढ़ाया

है । अधिक कहने की अपेक्षा जिज्ञासु साधक महानुभावों से इस भाष्य का अनुशीलन करें, ऐसी बार-बार प्रार्थना के साथ सद्गुरुस्वरूपा श्रीमाता शिवशक्त्यैक्यरूपिणी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायिका सदानन्दपूर्णास्वात्मैव परदेवता ललिताम्बा के पादपद्मों में मिलिन्दोऽहं नादलीनः ।

विदुषांवशंवदोऽनुगामी
रविशङ्करो द्विवेदः
श्रीगुरुसम्प्रदत्त ज्योतिष्पीठ पण्डितपदः
श्रीसरस्वती सदनम् - श्रीज्योतिरीश्वर
परमहंसीगङ्गा आश्रम क्षेत्र झौंतेश्वर
गोटेगांव (श्रीधाम)
जिला- नरसिंहपुर (म.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

गद्यखण्ड	विषय .... पृष्ठाङ्कः
१)	प्रकाशशिव की विमर्श शक्ति श्रीविद्या के भेद तथा भारतीयवाङ्मय १
२)	पञ्चदशी महामंत्र और गायत्रीमंत्र साम्य तथा ह्रीं में १२श नाद विवेचन ३
३,४)	पञ्चदशीमन्त्रोचारण में कालपरिमाण का विवेचन ४
५)	पञ्चदशीमंत्र के वर्ण परिगणन तथा १२श नादों का स्वरूप तथा उच्चारणकाल प्रतिपादन ६
६)	पञ्चदशीमंत्र के वर्णों के स्थान और प्रयत्न (बाह्य और आभ्यंतर) विवेचन १०
७)	पञ्चदशीमंत्र वर्णों में व्यष्टि समष्टि वर्गीकरण ११
८)	पञ्चदशीमंत्र सृष्ट्यादि त्रिविध कर्मों के परस्पर तीन-तीन भेद आदि तथा अन्य विषय १३
९)	पञ्चदशीमंत्र के तीन कूटों (कादि,हादि,सादि) में जाग्रदादि तीन अवस्था का सम्बन्ध १६
१०)	विषुवों के भेद तथा प्रत्येक का विवेचन एवं पञ्चदशीमंत्र के १५ अर्थ १८
११)	बहिरङ्गगायत्री एवं अंतरङ्ग गायत्री पञ्चदशीमंत्र के वर्गों की वैयाकरणी व्युत्पत्ति का विस्तृत विवेचन २६
१२)	प्रकाशविमर्शात्मक शक्तियों का सुस्पष्ट वर्गीकरणादि २८
१३,१४,१५)	पञ्चदशी मूलविद्या के तीनों कूटों के प्रत्येक वर्ण-वर्णो का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का विवेचन एवं व्यष्टि समष्टि विभाग का दिग्दर्शन "ई" में पौनरुक्त्य आपत्ति का निराकरण तथा और भी प्रतिपादित विषय २८

१६) मूलमंत्र (पञ्चदशी) का "भावार्थ" का प्रतिपादन ३०
१७) वाग् और अर्थ का साम्य, शब्द, अर्थ, चक्रमयी सृष्टि का विवरण ३२
१८) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक चतुर्विध वाणियों का निर्देश ३५
१९) इन चारों वाणियों का वेदप्रतिपाद्य सृष्टिक्रम से ही प्राणियों में स्फुरणता है और अभिव्यञ्जन होता है ३७
२०) इन चारों वाणियों से व्यक्त अर्थ यथार्थ में निर्देश्य परब्रह्म है, वह परब्रह्म वेद में अशब्द आदि विशेष निवंध पूर्वक कहा गया है ३८
२१) शब्द और अर्थ का निर्देश ब्रह्म द्वारा वह शब्द वैखरी में व्यक्त होता है, शिवशक्ति उभयात्मक वही ब्रह्म- है - प्रतिपादन ३८
२२) "अह" इन वर्णों से नाद विन्दु और विसर्ग रूप यह माहेश्वर १४ सूत्रों में "अ" आदि और 'ह' अन्त में यह वणित है ३९
२३) "आत्मा वै पुत्रनामासि" (कौषी०/२/७) इस रूप से वंश वृक्ष का संकेत ४१
२४) बिम्ब-प्रतिबिम्ब द्वारा अह पद वर्णद्वय से "कामकला" का प्रतिपादन ४२
२५) उदुम्बर बीज में पूर्ण वृक्ष सांगोपाङ्ग रहता है, अंकुरित होने के वाद सभी अवयव उदुम्बर है इसी प्रकार यह जगत् भी ब्रह्म है ४४
२६) अ, ह इन वर्णों के विवेचन में "ह" वर्ण की स्थिति का विश्लेषण ४७
२७) लघुषोढान्तर्गत न्यास में राहुकूट मुख में न्यस्त होता है। उसमें "स, ह" वर्ण हैं, उनके शिवशक्तिमय (अर्धनारीश्वरत्व) प्रतिपादन ५०

२८)	"कामकला" का विस्तृत विवेचन	५२
२९)	षड् अध्वाओं (मार्ग) का विवेचन	५४
३०)	पञ्चदशीमहामंत्र का सम्प्रदायार्थ विवेचन	५८
३१)	पञ्चदशीमहामंत्र में पञ्चमहाभूतात्मक ५ वर्ण ही रहें अधिक (१५) नहीं ये अनावश्यक हैं ? इसका समाधान	६०
३२)	त्रिविध साधकों का विवेचन	६२
३३)	त्रैपुर सिद्धान्त में ३६ तत्त्वों के अतिरिक्त ३७वें तत्त्वका भी प्रतिपादन	६५
३४)	३७ तत्त्वों की उपादेयता का प्रतिपादन	६७
३५)	पञ्चदशी महाविद्या (मूलमन्त्र) का सर्वस्वरूपत्व	६८
३६)	पञ्चदशीमंत्र का निगर्भार्थ-प्रतिपादन	६९
३७)	भगवती का गणेशादि रूपत्व	७०
३८,३९)	ग्रहनक्षत्र योगिनी आदि रूपत्व	७४-७७
४०)	श्रीचक्र के स्वरूप का (त्रिकोणों) विवेचन	७८
४१)	महाबिन्दुमय सदाशिवासन	८०
४२)	देवी श्रीविग्रह और श्रीगुरु श्रीविग्रह में अभेदत्व, साथ ही शिष्य में भी वही अभेदत्व	८२
४३)	पञ्चदशी मूलमहामन्त्र का "सर्वरहस्यार्थ" वर्णन	८५
४४)	पञ्चदशीमूल महामन्त्र का "महातत्त्वार्थ" वर्णन	८७
४५)	नामार्थ और शब्दरूपार्थ का विवेचन	८९
४६)	नामैकदेशार्थ प्रतिपादन	९१
४७,४८)	"शाक्तार्थ" विवेचन अर्थात् शक्तिसमूहार्थ विवेचन	९२, ९३
४९)	पञ्चदशीमहामंत्र में "सामरस्यार्थ" प्रतिपादन। (समस्त मन्त्रार्थ)	९५
५०)	वाग्भवकूटान्तर्गत वर्णों की व्युत्पत्ति और ऋग्वेदात्मकत्व वर्णन	९९

५१) पञ्चदशीमहामंत्र के द्वितीयकूट (हादिकूट)
- I यजुर्वेदात्मकत्व वर्णन १०३
५२) पञ्चदशीमहामंत्र का शक्तिकूट का प्रतिपादन
और सामवेदत्व १०५
५३) वह महाविद्यारूप भगवती स्वप्रकाशचिच्छक्ति है १०६
५४) महाषोडशी के पूर्व के वर्णों की व्युत्पत्ति एवं
षोडशीमन्त्र का अर्थ १०९
५५) पञ्चदशीमहामंत्र का "लक्ष्यार्थ" प्रतिपादन
एवं ग्रन्थ सन्दर्भ निर्देश एवं समर्पण ११४

परिशिष्ट

१) श्रीविद्यामन्त्रभाष्य १२१
२) श्रीविद्यामन्त्रभाष्य १२२
३) भगवती कुण्डलनी (आत्मशक्ति) रूपा हैं १२८
४) सङ्कल्प के मुख्याङ्ग विनियोग का शास्त्रीय विवरण १३१

श्रीविद्यामन्त्रभाष्यम्

गद्य खण्ड :-

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिर्निर्दृश्यदृक्स्वरूपो महान् प्रकाशः- शिवः । तद्विज्ञाने जाते सर्वं विज्ञातं भवति । तस्मिन् दृष्टे सर्वं बाधितं भवति । तस्य नैसर्गिकीस्फुरत्ता विमर्शरूपा शक्तिः, तद्योगादेव विश्वोत्पत्तिस्थितिलयलीलत्वं शिवस्य-

सम्पूर्ण विश्व में जितने भी ज्योतिर्मयतत्त्व हैं, सूर्य, चन्द्र, तारागण, अग्नि, विद्युत् और जो ज्योतिरू देवादितत्त्व हैं, इन रू.नी ज्योतियों की ज्योति, तथा जो न दृश्य है, और दृक् (दृष्टि) स्वस्वरूप नहीं अपितु दृष्टा है और इनसे भी परे केवल सर्वातिशायी प्रकाशरूप शिव है।

उन प्रकाश शिव के बोध हो जाने पर सब विज्ञात होता है तथा उस के ज्ञान हो जाने पर सभी बाधित हो जाते है ।

उन प्रकाशमय शिव की स्फुरत्ता (विवर्तादि) विमर्शरूप शक्ति है, उस विमर्शरूपा श‍ि : के योग से ही शिव सृष्टि, पालन और संहार रूप कृत्य इस विश्व के करते हैं ।।

(प्रथम गद्य खण्डे) तदुक्तं वरिवस्यारहस्ये -:

सजयति महान् प्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृश्यते किमपि। कथमिव तस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातमुच्यते वेदे । नैसर्गिकी स्फुरत्ता विम‍र्शरूपास्य वर्तते शक्तिः । इति तद्विज्ञानार्थमेव चतुर्दश विद्यास्थानानि । तेष्वपि सारभूतावेदाः। तेष्वपि गायत्री। तस्या रूपद्वितयम् । तत्रैकं स्पष्टम् द्वितीयं परमगोपनीयं श्री विद्याख्यम्। तदेव "कामो योनिः कमलेत्येवं साकेतिकैः शब्दैर्वेदोऽपि व्यवहरति । - इत्यादि सांकेतिक शब्दों से वेद भी व्यवहार करता है ।।-

अर्थ :- वह महान् प्रकाश (शिवस्वरूपः) सर्वोत्कृष्ट है,

सर्वातिशायी है। उस प्रकाश का अन्तस्तल में बोध हो जाने पर कुछ भी नहीं रहता अर्थात् भ्रम का अज्ञान का अध्यारोपित वस्तुओं का बोध हो जाता है परन्तु उसके ज्ञात होने पर ही सभी का ज्ञान भी होता है ऐसा निश्चय किस अभिप्राय से श्रुति प्रतिपादित है।। वह शिव निर्विशेष है, निरुपाधिक है, निष्क्रिय है, उस शिव(प्रकाश) की शक्ति विमर्शरूपा है, और यह उसकी स्वाभाविक स्फुरणामयी शक्ति है, विद्यमान है। उस विमर्शरूपाशक्ति का ही रूप वाङ्मय है, उसके विज्ञान के लिये ही चतुर्दश विद्यास्थान कहे गये हैं, उन स्थानों में भी सारभूत चारो वेद साङ्गोपाङ्ग हैं। उन वेदों में भी गायत्री के दो रूप हैं-

एक सर्वानुभूत सुव्यक्त गायत्री मंत्र है। और दूसरा रूप परमगोपनीय श्री विद्या नाम से गुरुमुखैकगम्य है। उसे ही देव्यथर्वशीर्ष में व्यक्त किया है-

कामो योनिः कमलावज्रपाणिर्गुहाहसा मातारिश्वाभ्रमिन्द्रः पुनर्गुहा सकलामायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादि विद्योम् (१४) (यही श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यजी ने - शिवःशक्तिःकामः क्षितिरथ रविश्शीतकिरणः। स्मरोहंसः शक्रस्तदनुच परामारहरयः। अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषुघटिताः भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ।। ३२।।

तद्विज्ञानार्थमेव चतुर्दशविद्यास्थानानि-'' चतुर्दशविद्याः-

यथा- पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश इति ।।

चारवेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद,

छः वेदाङ्ग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः, और ज्योतिष।

पुराण (१८) - न्याय, (वैशेषिक और न्याय दर्शन), मीमांसा (पूर्वमीमांसा- उत्तरमीमांसा), धर्मशास्त्र-(२४ स्मृतियाँ) इस प्रकार चतुर्दश विद्यास्थान ।

चार उपवेद भी हैं- आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थशास्त्र- इस प्रकार अष्टादश भी भेद हैं ।

(२ गद्य).. तत्र कादिविद्यायाः कादिवर्णास्तुस्पष्टाः हृल्लेखायान्तु व्योमाग्निवामलोचनाबिन्द्वर्धचन्द्ररोधिनीनाद-नादान्तशक्तिव्यापिका । समनोन्मनीति द्वादशसंहतिः। बिन्द्वा-दिनवानां संहतिर्नाद उच्यते । तत्र कामकला (ईकारः) त्रिकोणा (एकारः) च मात्राद्वितयोच्चार्ये ।

अर्थ :- वेदों में साररूपा गायत्री और गायत्री भी दो रूपों में है एक रूप सर्वविदित स्पष्ट है अर्थात् चतुष्पदा गायत्री- चौथा पाद (परोरजसे सावदोम्) है, इसकी अपेक्षा-त्रिपदा-गायत्री ही उपनयन संस्कार में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बटुकों को उपदिष्ट की जाती है, दूसरा जो रूप है वह परम गोपनीय है वह केवल गुरुमुखैकगम्य है, वह "श्रीविद्या" नामक है। वह श्रीविद्यामन्त्र, कादिविद्या कहा जाता है । इसके तीन कूट हैं- कादिकूट, हादिकूट और सादिकूट । इन तीनों कूटों के अन्त में "ह्रीं" हृल्लेखा संयुक्त है। कादिवर्ण स्पष्ट है यथा- क, ए, ई, ल,.... ह स क ह ल-सकल-इन तीनों के अन्त में "ह्रीं" बीज(हृल्लेखा) है हृल्लेखा में-व्योम[१] (ह्)+, अग्नि[२] (र्)+,-वामलोचना[३]-(ई)+बिन्दु[४] (-ं), अर्धचन्द्र[५], रोधिनी [६], --नाद[७], नादान्त[८], शक्ति[९], -- व्यापिका[१०], समना[११], उन्मनी[१२] ।

इस प्रकार बारह अवयवों का समूह है-: इन बारह अवयवो में प्रथम तीन अवयव व्योम, अग्नि और वामलोचना (ह् र् ई) व्यञ्जन और स्वर हैं, बिन्दु आदि नव अवयवों व (बिन्दु[१], अर्धचन्द्र[२], रोधिनी[३], नाद[४], नादान्त[५], शक्ति[६], व्यापिका[७], समना[८] और उन्मनी[९], ये नव अवयव) समूह "नाद" कहा जाता है। इस- श्रीविद्या मन्त्र में (पञ्चदशी महामन्त्र) कादि कूट में जो "ईकार" है उसे "कामकला" के रूप में साधक अभ्यास करते हैं और जो त्रिकोण है वह एकार है, इन दोनों के

उच्चारण में याने ई और ए के उच्चारण में दो मात्रा का समय लगता है, अर्थात् ये दोनों ही दीर्घस्वर में उच्चार्य होते हैं ।।

मूलपाठ-: बिन्दु रहित हृल्लेखा मात्रात्रितयोच्चार्या । अन्ये स्वरमात्राकालोच्चार्याः। व्यञ्जनानि तु अर्धमात्रोच्चार्याणि । बिन्दोरपि व्यञ्जनत्वादर्धमात्रैव । ''एकमात्रो भवेद्ध्रस्वः द्विमात्रो दीर्घ उच्यते । त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनन्त्वर्धमात्रकम्'' इति वचनादर्धचन्द्ररोधिन्यादयः पूर्व पूर्वार्धाः । बिन्दोरर्धः कालश्चन्द्ररोधिन्याः तस्यार्थः कालो रोधिन्या इत्येवम् ।। -

अर्थः -: बिन्दुरहित (ह्री) के ह् र् ई, इनका उच्चारण तीन मात्राओं से होता है। अन्य जो स्वर हैं उनका एक मात्रा के काल स्वर में उच्चारण होता है, व्यञ्जन वर्ण (क्, ल्, ह्, स् क् ह् ल् स् क् ल्) अर्धमात्रासे उच्चारित होंगे (व्यञ्जन्त्वर्धमात्रकम्) बिन्दु भी व्यञ्जन होने से अर्धमात्रा से उच्चारित होगा, बिन्दु भी वर्णरूप है पाणिनीयशिक्षा ३/५) के (आधार पर एक मात्रा काल को ह्रस्व और दो मात्रा काल को दीर्घ, और तीन मात्रा काल को प्लुत तथा व्यञ्जन अर्धमात्रा का होता है इस वचन के आधार पर अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समनी और उन्मनी इनमें वर्णत्व हैं परन्तु इनमें अर्धचन्द्र रोधिनी से उन्मनी पर्यन्त उत्तरोत्तर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम कालों से (मात्राओं) उच्चारित होते हैं अर्थात् बिन्दु से अर्धकाल अर्धचन्द्र और अर्धचन्द्र से आधा रोधिनी का रोधिनी से आधा नाद का, नाद से आधा नादान्त का, नादान्त से आधा शक्ति का, शक्ति से आधा व्यापिका का, व्यापिकासे आधा समनी (समना) का, समनी से आधा उन्मनी (उन्मना) का इस प्रकार कालपरिमाण व्यक्त है ।

३-४ गद्य खण्ड .. कालःपरमाणुर्लव उच्यते ''तदुक्तं नलनी पत्र संहत्याः सूक्ष्मसूच्यभिवेधने । दले दले तु यः कालः

स कालो लवसंज्ञितः'' इति । तथा षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयलवैरेका मात्रा । तथा च- बिन्दोरष्टाविंशदुत्तरशतं लवाः। अर्धचन्द्रस्य चतुःषष्टिः । रोधिन्याः द्वात्रिंशत् । नादस्या षोडश । नादान्तस्याष्टौ। शक्तेश्चत्त्वारः । व्यापिकाया द्वौ । समनाया एको लवः । उन्मनायाः नास्त्येवकालः। ''अतः सूक्ष्मतमः कालो नोपलभ्यो भृगूद्वह'' ।। - केषांचिन्मतरीत्या द्वादशोत्तर पञ्चशतलवात्मकत्वमेवमात्रायाः स्वरूपम् । ततश्च मात्रायाः द्वादशोत्तर'' पञ्चशततमो- भागःउन्मनाकालः ।।

काल का परमाणु लव कहा जाता है । यथा - कमल के पत्रों के समूह (२५६) को सुई से वेधने पर प्रत्येक दल में सुई के प्रवेश का क्रमशः प्रत्येक दल में जो सूक्ष्म समय होगा वह काल लवपरिमाण माना जाता है, इस आधार पर दो सौ छप्पन पत्रों के वेध के लवों की एक मात्रा होती है, बिन्दु में १२८ लव होते हैं, अर्धचन्द्र में ६४ लव होते हैं, रोधिनी में ३२ लव, नाद में १६ लव, नादान्त में ८ लव, शक्ति में ४ लव, व्यापिका में २ लव, समना में १ लव होता है। उन्मना का कोई काल नहीं है, क्योंकि इससे सूक्ष्मकाल परशुराम ! उपलब्ध नहीं होता उन्मना के आगे महाबिन्दु है जो त्रिपुरसुन्दरी (षोडशी) का अनुभवात्मक वेदन है।

किन्हीं अन्य आचार्यों के मत से ५१२ लवों की मात्रा का स्वरूप है, नवों भागों में सूक्ष्म होते होते उन्मना का उत्तरोत्तर क्रम से ५१२ वाँ भाग उन्मना का काल होगा (यह योगिनी हृदय का मत है) -

यथा-: **चतुःषष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं ततः ।।**
शक्त्यादीनां तुमात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी ।।

- चक्रसंकेत ३४

इसकी व्याख्या सेतुबंध ''टीका-भास्कर राय द्वारा "नादावयवस्योन्मनायाः काला-भावे त्वेकलवन्यूनतापत्या तद्विरोध इति- समनोन्मनयोः समानः काल इत्येव व्याख्या युक्तेति मन्तव्यम्" .....

अर्थात् - जिसप्रकार समना में काल होता है उसी प्रकार उन्मना में भी काल होता है ।

५ गद्य खण्डः- मूल-

प्रथम कूटे अष्टादश वर्णाः, द्वितीये द्वाविंशतिवर्णाः, तृतीयेऽप्यष्टादशैव, ''तदुक्तम् - वरिवस्यारहस्ये - प्रथमेऽष्टादश वर्णाः, द्वाविंशतिरक्षराणि मध्येस्युः । प्रथमेन तुल्यमन्त्यं संघातेनाष्टपंचाशत्'' इति । संहत्य लवत्रयन्यूना एकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे सम्पद्यन्ते ।

तत्र प्रथमकूटं प्रलयाग्निनिभं- मूलाधारमारभ्यानाहतं यावत्, द्वितीयं कोटि सूर्याभमनाहतमारभ्याज्ञाचक्रं यावत् तृतीयं कूटं कोटि चन्द्राभं तदारभ्य ब्रह्मरन्ध्रं- यावत् , मालामणिवद्वर्णाः क्रमेणोपर्य्युपरि भाव्या, आधारोत्थितो नादो गुण इव वर्णमध्ये गतो भाति । इदञ्च स्थान त्रयं बिन्द्वादिरहित कूटत्रयस्यैव । बिन्द्वादिनवकस्य तु स्थिति स्थानरूपाकारानाह वरिवस्याकारः- मध्ये फालं विन्दुर्दीपइवाभाति वर्तुलाकारः तदुपरि गतोऽर्ध-चन्द्रोऽन्वर्थः कान्त्या तथाकृत्या । अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोण-रूपा च चन्द्रिकाकान्तिः नादस्तु पद्मरागवत् अण्डद्वयवर्त्तिनीव सिरा । नादान्तस्तडिदाभः- सव्यस्थित बिन्दुयुक्त-लाङ्गलवत्। तिर्यग् बिन्दुद्वितयेवामोद्गच्छत्सिराकृतिःशक्तिः। बिन्दूद्गच्छत् त्र्यस्त्राकारधरा व्यापिका प्रोक्ता । ऊर्ध्वार्धे बिन्दुद्वय संयुतरेखा-कृतिः समना। सैवोर्ध्व बिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः । शक्त्यादीनान्तु वपुर्द्वादशरवि-कान्ति पुञ्जाभम् इति-

तथाच -: मूलाधारे क ए । स्वाधिष्ठाने ई ल । मणिपूरे ह र् ई । अनाहते ह स क । विशुद्धौ ह ल । आज्ञायां ह्रीं । स क ल - सहस्त्रारे । ह्रीं बिन्दुः ÷̐, अर्धचन्द्रः ˘, रोधिनी ▽̆ ,-

नादः ०।०, नादान्तः ०V̐, शक्तिः ।॰॰, व्यापिका ॰̐, -
समना ॰।°, उन्मनी ।०̐, महाबिन्दुः ०। - (५)

मूलमन्त्र में- वर्ण संख्या और मात्रा संख्या - का स्पष्ट विवरण इस प्रकार है :-

वर्णसंख्या - वाग्भवकूट - क, ए, ई, ल, ह्रीं - में अठारह वर्ण- यथा- क्-१ अ-१, ए-१, ई-१, ल् -१, अ-१ = ६ वर्ण, ह्रीं - १२ वर्ण ह्- १, र्- १, ई-१, बिन्दु-१, अर्धचन्द्र- १, रोधिनी- १, नाद- १, नादान्त- १, शक्ति-१, व्यापिका-१, समना- १, उन्मना- १- १२ वर्ण । ६ वर्ण- और १२ वर्ण योग = १८ वर्ण (प्रथम कूट में)

हादिकूट - कामराज कूट - ह स क ह ल ह्रीं = २२ वर्ण- यथा -: ह्- १, अ-१, स् -१, अ-१, क् -१, अ- १, ह्- १, अ -१, ल् -१, अ-१ = १०, १० वर्ण और ह्रीं के पूर्ववत् १२ वर्ण योग = २२ वर्ण । हादिकूट में ।

तृतीयसादिकूट-शक्तिकूट स क ल ह्रीं = में अठारह वर्ण यथा- स् -१, अ- १, क् -१, अ -१, ल् -१ अ -१ = ६ वर्ण और ह्रीं के पूर्ववत् १२ वर्ण = योग = ६+१२ =१८ वर्ण कुल योग - १८+ २२+ १८ = ५८ वर्ण मूलमन्त्र में । यही वरिवस्यारहस्य पुस्तक में कहा गया है यथा - प्रथमकूट में अष्टादशवर्ण हैं द्वितीय कूट में बाईस वर्ण हैं और प्रथम के जैसे १८ वर्ण अन्तिम सादिकूट में हैं, इन संख्याओं का योग अट्ठावन वर्णों का होता है। कादिकूट में १० मात्रा, हादिकूट में ११½ मात्रा, सादिकूट में ८½ मात्रा = योग करने पर तीन लव कम ३१ मात्राएँ मन्त्र में सम्पन्न होती हैं- यथा- मात्रा संख्या विवरण - प्रथम- वाग्भवकूट में (क ए ई ल ह्रीं) क्, अ, ए, ई ल् अ, ह्, र् ई - यथा- १० मात्रा - १/२, १, २, २, १/२, १ १/२ १/२ २

बिन्दु सहित समना तक- १ मात्रा - १० + १ = ११ मात्रा कादिकूट में ।

मध्यकूट में - कामराजकूट में (ह स क ह ल ह्रीं)- मात्रा-

यथा – ह्, अ, स्, अ, क्, अ, ह्, अ, ल्, अ १/२, १, १/२, १, १/२, १ १/२, १ १/२ १ = ७½ मात्रा हादिकूट में। ह्, र्, इ ७½ +३ = १०½ तथा – ½ ½ २ बिन्दु सहित समना तक – १ मात्रा = १०½ + १ = ११½ मात्रा हादिकूट में ।

सादिकूट में – शक्तिकूट (स क ल ह्रीं) में मात्रा – यथा –: स्–१, अ–१, क्–१, अ–१, ल्–१, अ–१, ह्, र्, ई = १/२, १, १/२, १, १/२, १ ½, ½ २ = ७½ तथा बिन्दु से समना तक– १ मात्रा– कुल ८½ इस प्रकार सम्पूर्ण मात्राएँ ११ मात्रा, ११½ मात्रा, ८½ मात्रा = ३१ मात्रा – ये मात्राएँ १–१–१ लव (मात्रा) न्यून होकर कुल एकोनत्रिंशत् (२९) मात्राएँ मन्त्र में –

विवरण श्लोक यथा–

बिन्दुरहितहृल्लेखा मात्राकालत्रयोच्चार्या: ।½
अन्येषां वर्णानां मात्राकालोऽर्धमात्रया सहित: ।
बिन्दोरर्धमात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धा: ।। १/१६।।
संहत्यैकलवोनो मात्राकालोऽस्य नादस्य ।
एकादशवाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये ।। १/१७।।
सार्धाअष्टौ शक्तावेवैकलवोनिता मात्रा: ।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूना: ।। १/१८।।

(वरिवस्यारहस्ये १मांशे)

उस पञ्चदशी महामन्त्र का प्रथमकूट कादिकूट है वह प्रलयकालीन अग्निवत् है कादिकूट की मूलाधार से आरम्भ कर अनाहतचक्र तक भावना करे, द्वितीयकूट हादिकूट करोडों सूर्यों के समान प्रकाश वाला है । उसकी अनाहतचक्र से लेकर आज्ञाचक्रतक भावना करे, और तृतीयकूट, सादिकूट करोड़ों चन्द्रों के समान अमृतवर्ष ण के कारण शीतल और आह्लादक है उसकी भावना आज्ञाचक्र से आरम्भ कर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त करे इनकी भावना उसी प्रकार करे जैसे माला में तन्तु में पिरोए हुए मणि जैसे इनके (कूटों के) वर्णों की क्रमश: ऊपर के

ऊपर भावना करनी चाहिए, क्योंकि मूलाधार से उठा हुआ नादसूत्र जैसे वर्णों के मध्य में स्थित रहता है। यह जो स्थान भावित्त हुआ है वह इन तीन कूटों का है, पर इनमें बिन्दु आदि से रहित तीन कूटों का है। बिन्दु आदि उन्मनी पर्यन्त नौ समूहों की स्थिति, स्थान, रूप और आकारों का वर्णन वरिवस्याकार ने किया है- मध्ये फालमित्यादि- अर्थात्- भाल के मध्य गोलाकार ।(०), बिन्दु दीप जैसे उद्दीप्त होता है, उस बिन्दु के ऊपर स्थित अर्धचन्द्र (˘) उस आह्लादक आकृति से अन्वर्थक नाम वाला होता है, अर्धचन्द्र के

ऊपर- रोधिनी (ँ) त्रिकोणरूपिणी चन्द्रिका की कान्ति जैसी होती है, रोधिनी के बाद नाद पद्मराग जैसा अरुणवर्ण जो दो वृत्त के मध्य में सीधी शिरा (०।०) जैसा है, नाद के ऊपर नादान्त विद्युल्लेखा जैसा (० V ँ) उसका रूप व्यवस्थित बिन्दु युक्त लाङ्गल जैसा- याने हल की शिरा जैसा है, नादान्त के ऊपर शक्ति है, जो तिरछे दो बिन्दुओं के बीच बाईं ओर मुड़ी हुई शिरा (‍ ़़) जैसी है शक्ति के ऊपर बिन्दु के ऊपर जाती हुई त्रिकोण वाली व्यापिका है (़ ँ), व्यापिका के ऊपर समना है, जो ऊपर और नीचे स्थित दो बिन्दुओं से युक्त रेखा आकृति वाली है (°।़), समना के ऊपर- उन्मनी है, जो ऊर्ध्वबिन्दु रहित है उसका रूप (़।ँ) जैसा है, उन्मना के ऊपर महाबिन्दु है (०) रूप वाला है (यहाँ काललव नहीं)- इन शक्ति आदि द्वादश सूर्य की कान्ति जैसी अरुणाभा प्रकाशयुक्त है (इनका आज्ञाचक्र के ऊपर एक एक अंगुल ऊपर न्यास किया जाता है इनके मन्त्र भी हैं-यथा- बिन्दु का ॐ अं आं सौः नमः, अर्धचन्द्र[२] का- ॐ ऐं क्लीं सौः नमः, रोधिनी[३] का ॐ ह्रीं क्लीं सौः नमः, नाद[४] का ॐ हैं ह्क्लीं ह्सौः नमः नादान्त[५] का ॐ **ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः** नमः, शक्ति[६] का ॐ ह्रीं क्लीं ब्लें नमः व्यापिका[७] का ॐ ह्रीं श्रीं सौः नमः, समना[८] का ॐ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः नमः, उन्मना[९] का मन्त्र ॐ क ए ईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं है। और महाबिन्दु में -पञ्चदशी और पूर्णाभिषिक्तों के लिये

षोडशी मन्त्र का न्यास किया जाता है ।।)

(इन द्वादश नाद समूहों का १०८१७ बार जप करने पर प्रत्येक का १-१ सहस्त्र जप करने से नादतत्त्व का साक्षात्कार होकर आनन्दानुभूति होती है ऐसा साधक गणों का अनुभूत प्रयोग है) ।। ५ ।।

वस्तुतः इन नादों की उक्त संख्यानुसार जो विधि है वह सुस्पष्ट नहीं है यह केवल गुरुमुखैकगम्य है । अतः इसे श्रीसद्गुरु से उपदिष्ट होकर ही साधक करें ।।

मूल-: षष्ठगद्य- मन्त्रवर्णानां कण्ठताल्वादिद्युत्पत्तिस्थानानि-आन्तरान् बाह्यांश्च यत्नान् ज्ञात्वा तेषां स्थितिस्थानानि च ज्ञात्वा वर्णानिवमुच्चारयेद्यथा प्राथमिको नादो द्वितीय कूटेन सार्धमुच्चारितो भवेत् । द्वितीयनादस्तु तृतीयेन कूटेन सार्धमुच्चारितो भवेत् । प्राक्तनयोः-बिन्द्वादि नवकयोस्तु सम्मेलनेन तृतीयं यथा तत्संवलितं भवेत्तथोच्चारणीयम् । तृतीयकूटस्थं नादं बिन्द्वादि समनान्त मुच्चारयेत् । एतदुच्चारणमुन्मन्यन्तर्निलीनं विभावयेत् ।। ६ ।।

अर्थ-: पञ्चदशी मन्त्र- ४ क ए ई ल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकलह्रीम्-के वर्णों में तीन क, १० अकार और दो हकार का कण्ठस्थान है। (अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) ए का कण्ठतालु स्थान है । (एदैतोः कण्ठतालु) और ४ ईकार का तालुस्थान है (इचुयशानां तालु), दो सकार का तीन लकार का दन्तस्थान है (लृतुलसानां दन्ताः) तीन रेफों का मूर्धा स्थान है, (ऋटुरषाणां मूर्धा), और तीन बिन्दुओं का नासिका-स्थान है (नासिकानुस्वारस्य बिन्दु आदि नवनादसमूह का नासिकास्थान है)।

वर्णों के आभ्यन्तर प्रयत्न इस प्रकार हैं, यथा- ककार की स्पर्श संज्ञा है और स्पर्शों का स्पृष्ट आभ्यन्तर प्रयत्न है, (कादयो मावसानाः स्पर्शाः) । स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम्), अकार का संवृत आभ्यन्तर प्रयत्न है- ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतमेव), ईकार और एकार का विवृत

आभ्यन्तर प्रयत्न है (विवृतं स्वराणाम्), रेफ और लकार ईषत्स्पृष्ट आभ्यन्तर प्रयत्न है, (ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्) (यणोऽन्तःस्थाः), हकार और सकार ईषद्विवृतआभ्यन्तर प्रयत्न के हैं, (ईषद्विवृतमूष्मणाम्)- शषसहा ऊष्माणः)और बिन्दु आदि नवसमूह संवृत हैं ।

मन्त्रवर्णों के बाह्यप्रयत्न इस प्रकार हैं -

यथा- ककार (सभी)का विवार, श्वास,अघोष, और अल्पप्राण बाह्य प्रयत्न है (खरोविवाराश्वासाअघोषाश्च और वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः), दोनों सकार महाप्राण विवारादि बाह्यप्रयत्न हैं। (वर्गाणां द्वितीय चतुर्थौशलश्च महाप्राणाः), सभी स्वर

उदात्त बाह्य प्रयत्न के हैं, हकार संवार, नाद, घोष और महाप्राण (हशः संवारानादाघोषा- श्च) है, बिन्दुआदि नव समूह सर्वथा संवार श्वास, नाद, घोष बाह्य प्रयत्न हैं ।

इस स्थान प्रयत्न विवेकानन्तर मन्त्रवर्णों का इस प्रकार उच्चारण करें- जैसे प्रथम- कूट (कादिकूट) का नादतन्तु द्वितीयकूट (हादिकूट) के साथ उच्चारित हो द्वितीय कूट तृतीयकूट (सादिकूट) के साथ उच्चारित हो, पूर्वके प्रथम और द्वितीय कूटों और बिन्द्वादि नव समूहों के सम्मेलन से तृतीयकूट जिस प्रकार मिल सके वैसा उच्चारण करे (यह रहस्य उच्चारण का श्री गुरु ही स्वयं अपने मुख से उच्चारित करके बता सकते हैं गोपनीय होने से) तृतीयकूट (सादिकूट) के नाद को बिन्दु से समना पर्यन्त उच्चारित करें अन्त में इस पूर्व से समनापर्यन्तनाद उन्मनी में विलीन हो गया ऐसी भावना करें। (उन्मनी अवस्था से आगे काल परिमाण नहीं है) ।। ६ ।।

मूलः-ः सप्तम् गद्य- श्रीविद्यायाः वाग्भवकामराज शक्तिकूटानां व्यष्टि समष्टिभेदेनचतुर्धा भिन्नानां चत्वारि बीजानि सृष्टिस्थितिसंहारानाख्यारूपाणिभावनीयानि। तान्येव ज्ञातृज्ञानज्ञेयानि तत्सामरस्यञ्चतान्येवाग्निचक्रसूर्यचक्रसोम-चक्राणि

ब्रह्मचक्रञ्च, मित्रीशनाथषष्ठीशनाथोड्डीशनाथाश्चर्यानन्दनाथश्च जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयस्तुरीया च, वामाज्येष्ठारौद्र्यः शान्ताच, इच्छाज्ञान-क्रियाअम्बिकाच, कामेश्वरीवज्रेश्वरी-भगमालिन्यो महात्रिपुरसुन्दरी च, आत्मान्तरात्मपरमात्मानो ज्ञानात्मा च, आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व शिवतत्त्वानि सर्वतत्त्वञ्च, कामरूपपूर्णगिरिजालन्धराण्योड्यान-पीठञ्च, प्राग्दक्षिणपश्चिमान्वया उत्तरान्वयश्च, एत एव समयाम्नाय-पदाभ्याञ्च-कथ्यन्ते । स्वयम्भूबाणेतराणि परञ्च, पश्यन्तीमध्यमा-वैखर्य्यःपराच, एतान्येव पुटधामतत्त्वपीठान्वयलिङ्गमातृका-रूपेणचिन्तनीयानीत्यर्थः । तदुक्तं वरिवस्यारहस्ये- ''पुटधामतत्त्व-पीठान्वयलिङ्गकमातृतत्समष्टीनां रूपान्तराणि बीजान्यमूनि चत्वारिचिन्तनीयानि'' इति।।७।।

अर्थ-: श्रीविद्या के वाग्भवकूट (कादिकूट), कामराजकूट (हादिकूट), शक्तिकूट (सादिकूट), व्यष्टि, समष्टि भेदसे (व्यष्टि एक ईकाई) समष्टि (समूह), चाररूपों में विभक्त चार बीजों की भावना करनी चाहिये वे चार बीज हैं सृष्टि, स्थिति, संहार अर्थात् सृष्टि- ब्रह्मा, स्थिति- पालन और संहार- रुद्र तथा अनाख्या- ईश्वर-निग्रह तथा अनुग्रह- पञ्चमुख सदाशिव-ईश्वर निग्रह और अनुग्रह-सदाशिव इन दोनों निग्रह और अनुग्रह की समष्टि को अनाख्या कहा जाता है इस प्रकार चारबीज हैं सृष्टि स्थिति संहार और अनाख्या इन कूटों की व्यष्टि और समष्टि रूप में भावना करनी चाहिए । ये ही अर्थात् व्यष्टिरूप तीन पूर्वोक्तकूट तथा सम्पूर्ण मन्त्र समष्टिरूप- चार बीजों से सृष्टि स्थिति संहार और अनाख्या नामक बीजों से भावनीय होते हैं और ये ही, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप में प्रत्येक व्यष्टिरूप हैं तथा इन तीनों का अभेद-समष्टिरूप सामरस्य है, ये ही पुनः अग्निचक्र सूर्यचक्र और सोमचक्र व्यष्टिरूप और इनकी समष्टि- ब्रह्मचक्र और ये ही व्यष्टि रूप में मित्रीशनाथ, षष्ठीशनाथ और उड्डीशनाथ तथा समष्टि सामरस्य में आश्चर्यानन्दनाथ हैं

(गुरुरूप हैं), ये ही व्यष्टिरूप में- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था तथा समष्टिरूप में- तुरीयावस्था है, ये ही व्यष्टिरूप में वामा, ज्येष्ठा और रौद्री तथा समष्टि रूप में शान्ता, और ये ही व्यष्टिरूप में इच्छा, ज्ञाना, क्रिया तथा समष्टिरूप में अम्बिका, ये ही व्यष्टिरूप में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी-भगमालिनी तथा समष्टिरूप में महात्रिपुरसुन्दरी, और ये ही- व्यष्टिरूप से आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा हैं तथा समष्टि रूप ज्ञानात्मा है । (यही आत्मचतुष्ट्य), ये ही व्यष्टिरूप में आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व तथा समष्टिरूप में सर्वतत्त्व (ये ३६ तत्त्व भूम्यादि -शिवान्त हैं) । ये ही व्यष्टिरूप में कामरूप, पूर्णगिरि जालन्धर तथा समष्टिओड्यानपीठ, ये ही प्राक् दक्षिण, पश्चिम और उत्तरान्वय इसी कारण इन्हें समय पद और आम्नायपद से कहा जाता है, लिङ्गरूप में स्वयम्भूलिङ्ग (भूमिगर्भ में प्राप्त), बाणलिङ्ग, इतरलिङ्ग और परलिङ्ग, और यही पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी तथा परा मातृका है, (वैखरी वाणी में मनुष्य बोलते हैं, व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार है- वै निश्चयेन सुस्पष्टत्वात् खं कर्णविवरगतनभोरूप श्रोत्रेन्द्रियं रातिगच्छति = वैरवरी) इसी प्रकार मातृका: माति, तरति, कायति इति मातृका: इन सभी के लिये वरिवस्यारहस्य नामक पुस्तक में- यह श्लोक दिया है- यथा -

पुटधामतत्त्व पीठान्वय लिङ्गकमातृतत्समष्टीनां रूपान्तराणि बीजान्यमूनिचत्वारि चिन्तनीयानि ।।

अर्थात् - पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, लिङ्ग और मातृका की बीजों और व्यष्टि समष्टि तथा सामरस्य भेदों में भावना करनी चाहिये।।७।।

८ गद्य खण्ड-: सृष्टिस्थिति संहाराख्यानि त्रिविधान्यपि कर्माणि प्रत्येकमपि त्रिविधानि । तद्यथा- सृष्टिसृष्टि:, सृष्टिस्थिति:, सृष्टिसंहृति: एवं स्थितिसृष्टि:, स्थितिस्थिति:, स्थितिसंहृतिश्च, संहृतिसृष्टि संहृतिस्थिति:, संहृतिसंहृति: । स्वशक्तिभि: सहिता ब्रह्माद्याएतत्कर्मणामधिपतय: । तत्र प्रथमकूटे ककारो-

ब्रह्मणोरूपम् त्रिकोणाभारती स्वरूपा, तुर्यःस्वरः विष्णुस्वरूपः, लकारः पृथ्वीस्वरूपः, हकारो रुद्ररूपः, रेफो रुद्राणीस्वरूपः, तुर्यस्वरस्तुशान्ताम्बिकात्मक-मिथुनस्वरूपः । द्वितीयकूटे मध्यमहकारं परित्यज्यावशिष्टाक्षरेष्वपि पूर्वोक्तैव रीतिः । तृतीयकूटे तु द्वितीयकूटस्थत्यक्तहकारस्य ब्रह्मरूपत्वं, सकारो भारतीरूपः, शेषाः पूर्ववत् । प्रथमकूटे हल्लेखान्तर्गत कामकलायांयाक्षपरार्धकला तुरीयबिन्दुरूपा, बिन्दुना मुखं बिन्दुद्वयेनकुचौ सपरादर्धेन योनिः, सैव वह्निकुण्डलिनी, द्वितीयकूटे सैव सूर्यकुण्डलिनी, सैव तृतीयकूटे सोमकुण्डलिनी । बिन्द्वादिनवकसमष्टिरूपो नादो दीपशिखाग्रवर्तिकज्जलले-खावत्तत एवोत्पद्यते । अनाहतमारभ्योत्थिते नादेत्रैलोक्यमोहन सर्वाशा पूरक संक्षोभणचक्र-त्रयस्या त्रिविधसृष्टिरूपस्या भ्रूमध्यमारभ्धोत्थिते नादे सर्वसौभाग्यदायक सर्वार्थसाधक सर्वारक्षाकरचक्रत्रयस्य त्रिविधस्थितिरूपस्य बिन्दुस्थानमारभ्यो-त्थितेनादे सर्वरोगहर सर्वसिद्धि प्रदसर्वानन्दमयचक्रत्रयस्य त्रिविध संहृतिरूपस्य च चिन्तनं कार्यम् ।।८।।

अर्थः -: यथा-: सृष्टि, स्थिति, संहार नामक त्रिविध कर्म भी प्रत्येक कर्म तीन-तीन प्रकारों में विभक्त होते हैं- जैसे- सृष्टि सृष्टि, सृष्टिस्थिति, सृष्टिसंहार, इसी प्रकार स्थितिसृष्टि, स्थितिस्थिति, स्थितिसंहार और संहारसृष्टि, संहारस्थिति और संहारसंहार अपनी शक्तियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन कर्मों के अधिपति हैं, वह इस प्रकार हैं- प्रथमत्रिक (सृष्टि के त्रिविधत्रिक) के शक्ति शक्तिमान् भारती ब्रह्मा, द्वितीयत्रिक के (स्थिति के त्रिविध त्रिक) शक्ति पृथ्वी शक्तिमान् विष्णु अधिपति हैं, तथा तृतीयत्रिक के (संहार के त्रिविध त्रिक) शक्ति रुद्राणि और शक्तिमान रुद्र अधिपति हैं, वहाँ प्रथमकूट का (कादिकूट- क ए ई ल ह्रीं) ककार ब्रह्मा का रूप है त्रिकोणा (ए) भारती (ब्रह्मा की शक्ति

प्रथम त्रिक की) का स्वरूप है, तुर्यस्वर अर्थात् - अकारादि १६ स्वरों में ''अ'' से चतुर्थ स्वर ई है, वह ई विष्णुस्वरूप है, ''ल'' (विष्णु की शक्ति) पृथ्वीस्वरूप है (पृथ्वी का ''ल'' बीज हैं) तथा ''ह्रीं'' का ह कार रुद्र का रूप है (''ह'' शिव बीज है), रेफ (र्) रुद्रशक्ति रुद्राणि का स्वरूप है, (तुर्यस्वर ''ह्रीं ''में ह र् ई) तुर्यस्वर चतुर्थ स्वर है, यह शान्ता और अम्बिका का मिथुन स्वरूप है (इनका अनुस्वार याने बिन्दु से निभालन अर्थात् अपरोक्षानुभूति होती है) - ''व्योम्नाप्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना, तयोर्विमर्श ईकारो बिन्दुना तन्निभालनम्) -(तन्त्रराजे) द्वितीयकूट में (ह स क ह ल ह्रीं) मध्यम हकार को छोड़कर शेष वर्णों (ह स क ल ह्रीम) में भी पूर्वोक्त रीति से विमर्श होगा- यथा- द्वितीय में मध्यम हकार को छोड़कर ''हकार''- ब्रह्मा का रूप, ''सकार'' भारतीस्वरूप ''क'' विष्णुस्वरूप ''लकार'' पृथ्वीरूप ''ह'' रुद्ररूप, ''र'' रुद्राणी रूप, ''ईकार''- शान्ताम्बिका मिथुनरूप (बिन्दु अनुस्वार से निभालन) तृतीयकूट में- स क ल ह्रीम् (शक्तिकूट, द्वितीयकूट के त्यक्त दूसरे हकार को लिया- तब-वही क्रम यथा- ''हकार'' ब्रह्मा, ''सकार'' भारती, ''ककार'' विष्णुरूप, ''लकार'' पृथ्वीरूप- ''ह'' रुद्ररूप, ''र'' रुद्राणी रूप और ''ईकार'' शान्ताम्बिका का युग्म (मिथुन) रूप अन्त का बिन्दु (अनुस्वार) निभालक अर्थात् अपरोक्षानुभूति-कारक है ।

पञ्चदशी मन्त्र तीनों कूटों का व्यष्टि रूप से तथा समष्टिरूप से (ह्रीम्) सामरस्य चिन्तन किया । वहाँ बिन्दु के विषय में एक और चिन्तन है- वह इस प्रकार है- यथा-: प्रथम कूट वाग्भव कूट में- हल्लेखा (ह्रीम्) के अन्तर्गत कामकला में जो परार्धकला-सहित चतुर्थ बिन्दुरूपा है- वह गुरुमुखैकगम्या है उसका (कामकला) ऊर्ध्वबिन्दु मुख है, दो बिन्दु स्तन हैं, सपरार्द्ध (हरार्धकला) ऐं वह योनि है, वही वह्निकुण्डलिनी है । द्वितीय कूट हादिकूट में वह सपरार्धकला सूर्यकुण्डलिनी है तथा तृतीय कूट सादि (शक्तिकूट) में वह सपरार्धकला सोमकुण्डलिनी है तथा तृतीय कूट सादिकूट(शक्तिकूट) में वह सपरार्धकला सोमकुण्डलिनी

है। बिन्दु आदि नवसमष्टिरूपनाद उसी कुण्डलिनी से उत्पन्न होकर दीपशिखा के अग्र भाग में स्थित कज्जलरेखा जैसा है । अनाहत चक्र से लेकर भ्रूमध्य तक उठे हुए नाद में त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशा पूरक और संक्षोभण नामक तीन चक्र त्रिविध सृष्टि (सृष्टिसृष्टि, सृष्टिस्थिति, सृष्टिसंहृति) का रूप है वही भ्रूमध्य से आरम्भ हुए नाद में सर्वसौभाग्यदायक सर्वार्थ-साधक और सर्वरक्षाकर तीन चक्रों का त्रिविधस्थितिरूप (स्थितिसृष्टि स्थितिस्थिति, स्थितिसंहृति) है, एवं बिन्दु स्थान से (भौंह आज्ञा चक्र से एक अंगुल ऊपर) आरम्भ हुए नाद में सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद और सर्वानन्दमय चक्रों का त्रिविधसंहृतिरूप (संहृतिसृष्टि, संहृतिस्थिति और संहृतिसंहृति) का चिन्तन करना चाहिए ।

(यहाँ श्रीयंत्र के श्रीचक्र के नवआवरण-१ त्रैलोक्यमोहन चक्र- त्रिरेख भूपुर- प्रथम आवरण, २ सर्वाशापरिपूरक चक्र- द्वितीयावरण- षोडशदलचक्र, ३ सर्वसंक्षोभणचक्र अष्टदल चक्र, तृतीयावरण ४ सर्वसौभाग्यदायक चक्र चतुर्थावरण, चतुर्दशारचक्र, ५ सर्वार्थसाधक चक्र पञ्चमावरण बहिर्दशारचक्र, ६ सर्वरक्षाकर चक्र- षष्ठावरण अन्तर्दशार-चक्र, ७ सर्वरोगहर चक्र, अष्टारचक्र सप्तमावरण, ८ सर्वसिद्धिप्रदचक्र अष्टमावरण त्रिकोणचक्र, ९ सर्वानन्दमयचक्र-नवमावरण बिन्दुचक्र) हैं ।।८।।

९ गद्यखण्ड- बाह्येन्द्रिय व्यवहाररूपा जागरावस्था, तद्धेतुर्ज्ञानं तृतीयकूटस्थ- हृल्लेखास्थे रेफे भावनीयम् । बाह्येन्द्रियानपेक्षान्तःकरणव्यवहाररूपा स्वप्नावस्था तज्जनक-ज्ञानरूपः प्रकाशः हृल्लेखास्थया काम कलया बोध्यः । अथापि स्वप्नावस्था गलस्थे द्वितीयकूटस्थे लकारेचिन्त्या , वृत्तिसामान्या भावरूपा अविद्या वृत्तिरूपा वा सुषुप्तिःललाटस्थाने तृतीयकूटस्थ-हृल्लेखास्थे बिन्दौ चिन्त्या चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनं तुर्यावस्था तद्धेतुः प्रकाशः अर्धचन्द्ररोधिनीनादेषु भावनीयः मनोवचनातीत प्रत्यगानन्दघन एव तुर्यातीतावस्था नादान्तादिपञ्चके भाव्या ।

तार्तीयके रेफस्थाने बिन्दौ रोधिन्यां नादान्तव्यापिकयोः चन्द्रकतुल्यानि पञ्चशून्यानि भाव्यानि । नीरूपं-षष्ठं महाशून्यं उन्मन्यां चिन्त्यम् ।।९।।

अर्थ-: बाह्येन्द्रियाँ पांचज्ञानेन्द्रियाँ (कर्ण, नासिका, नेत्र, त्वक् और जिह्वा) पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक् , पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) इन में कर्मेन्द्रियाँ विषयों का आहरण करती हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ विषयों का परिज्ञान करती हैं, इसी को जागर- (जाग्रत) अवस्था कहते हैं । इन इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है विषयों का उसकी भावना के समय तृतीयकूटस्थ (सादिकूट शक्तिकूट) हृल्लेखा में स्थित रेफ को मानना चाहिए । बाह्य दोनों इन्द्रिय समूहों की अपेक्षा न करके अन्तःकरण चतुष्टय (मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार) से होने वाला जो व्यवहार है वह स्वप्नदशा है, इसका बोधक या जनक ज्ञानरूप प्रकाश है वह हृल्लेखा (ह्रीं) में स्थित कामकला से होता है। इसके बाद भी इस स्वप्नावस्था का गले में (कण्ठ) स्थित या द्वितीय कूट में स्थित लकार में चिन्तन करना चाहिये। अविद्या वह है जहाँ इन्द्रियों के सामान्य व्यवहार का अभाव हो अर्थात् बाह्येन्द्रियों की वृत्ति शून्य हो जाती है वह सुषुप्ति है । उसका चिन्तन ललाट में तृतीय कूट में स्थित हृल्लेखा स्थित बिन्दु में करना चाहिये । चित्-शक्ति का अभिव्यंजक नाद का अनुभव तुर्यावस्था है उसका हेतु जो प्रकाश है उसका अनुभव अर्धचन्द्ररोधनी और नाद में करना चाहिये । मन, वाणी से अतीत घनीभूत प्रत्यगानन्द ही तुर्यातीतावस्था है इसकी नादान्तादि पाँच में (नादान्त शक्ति व्यापिका समना और उन्मनी) भावना करनी चाहिये । तृतीयरेफ स्थान में बिन्दु में रोधिनी में नादान्त और व्यापिका में चन्द्रक के समान (मोर के पंख में चन्द्रमा के जो विविध रंग का गोल बिम्ब रहता है उसके जैसे पांच शून्यों की भावना करनी चाहिये । उन्मनी में नीरूप याने रूपरहित छटवाँ शून्य (महाशून्य) चिन्तन करना चाहिये ।।९।।

१० गद्य खण्ड-: मूलम्-: प्राणत्ममानसानां संयोगः प्राण-विषुवसंज्ञकः । प्राथमिक कूटनादे व्यष्टिसमष्टि भेदेन बीजचतुष्कस्य स्वस्य चैक्येन नादमयता विभावनं मन्त्र[२] विषुवम् । मूलाधारादि-षट्चक्रस्याध ऊर्द्ध्वं चैकैकोग्रन्थिरिति द्वादशग्रन्थयः । भेदेन मार्गेणैव सुषुम्नानाडी मूलाधाराद्ब्रह्मरन्ध्रंव्याप्नोति । तेनैव मार्गेण नादस्य वर्णपङ्क्तेश्च नाडीसंयुतत्वेन भावनयोच्चारणं नाडी[३] विषुवम्। तृतीयकूटस्थ रेफादिषु सप्तसु स्थानेष्वाधारादारब्धस्य नादस्याभिधानादुत्तरोत्तरक्षणेषु कांस्यतालध्वनिवत् सौक्ष्म्य-तारतम्यस्यशक्तौ लयभावनं प्रशा[४]न्तविषुवम् । शक्त्यन्तर्गत नादं समनायां लयचिन्तनं शक्ति[५]विषुवम् । समनोद्ध्वं पुनरुज्जीवनस्य सूक्ष्मतमस्य नादस्योन्मन्यां लयः काल[६]विषुवम् । अकुल सहस्त्रारा-दिकोन्मनान्तप्रदेश संस्थेषु ककारादिषून्मनान्तेषु श्रीविद्याकूटालयेषु अयुतोत्तराष्टशतोत्तरसप्तदशत्रुटिपर्यन्तं विद्यावयस्थानसंलग्नता-पूर्वकं नादोच्चारणे कृते सति तत्त्वस्य संविदभेदस्य बोधो भवति तदिदं तत्त्व[७]विषुवम् । एवं पूर्वोक्तरीत्या पञ्चावस्था षट्शून्यानि सप्त विषुवानि नव चक्राणि मनोरथांश्च स्मरतो विद्यावर्णोच्चारणं जपः ।।१०।।

(सात विषुवों का वर्णन इस खण्ड में किया गया है)- यथा-:

अर्थ-: प्रथमप्राणविषुव- प्राण (पंचप्राण) आत्मा, और मानस इनका संयोग प्राण[१]विषुव है। प्रथमकूट (वाग्भवकूट) में व्यष्टि और समष्टिभेद से बीज चतुष्ट्य (पूर्वोक्त सृष्टि, स्थिति, संहार और अनाख्या) और ऐक्य स्वयं की ऐक्य भावना से स्वयं को नादमय होने की भावना को मन्त्र[२]विषुव कहा जाता है ।। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र इन छह चक्रों के नीचे और ऊपर दो-दो ग्रन्थियाँ इस प्रकार बारह ग्रन्थियाँ हैं, उन ग्रन्थियों का भेदन करते हुए ही सुषुम्णा (कुण्डलिनी) मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त व्याप्त होती है षट्चक्रों में

स्थित इसी मार्ग से नादका और चक्रों में अर्थात् पत्रों में (दलों में) जो वर्ण हैं वे ही पत्र रूप हैं । नाद का और वर्णों का सुषुम्णा नाडी के साथ भावनाद्वारा उच्चारण (पद्मदलों और नादका,) नाडी³विषुव कहा जाता है। तृतीयकूट में (सादिकूट-शक्तिकूट-स क ल ह्रीम्) स्थित रेफ आदि सात स्थानों में अर्थात् ह्रीं का र्, अनुस्वार (वामलोचना), बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त सात स्थानों में मूलाधार से आरब्धनाद के अभिधान से याने उच्चारण से आने वाले उत्तरोत्तर क्षणों में कांस्य (झांझ या करताल) की ध्वनि जैसे क्रमशः उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते नाद का शक्ति लय हो गया है, ऐसी भावना को प्रशान्त⁴विषुव कहा जाता है, शक्ति के अन्तर्गत आये हुये नाद का समना में लय चिन्तन शक्ति⁵विषुव कहा जात है, समना के ऊर्ध्व में उज्जीवित अत्यन्त सूक्ष्म नाद का उन्मनी में लय को काल ६ विषुव कहते हैं, अकुल सहस्रार आदि से उन्मना पर्यन्त स्थित ककारादि से उन्मनान्त श्रीविद्या के कूटालयों के सभी मन्त्रावयवों का १०८१७ त्रुटि पर्यन्त विद्या के अवयवों के स्थान पर्यन्त संलग्नतापूर्वक नाद के उच्चारण करने पर तत्त्व के और संविद के अभेद का बोध होता है, वह यह तत्त्व⁷विषुव कहा जाता है ।। इस प्रकार पूर्वोक्तविधि पाँच अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया, और तुरीयातीत), षट्शून्य अर्थात् प्रणव-अ, उ, म बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद-नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना एवं उन्मना- इन बारह अवयवों में प्रत्येक दूसरा शून्य है- जैसे उ, प्रथम शून्य, बिन्दु दूसरा-शून्य, रोधिनी- तीसरा-शून्य, नादान्त चतुर्थ-शून्य, व्यापिनी पंचम- शून्य तथा उन्मना छठा निराकार शून्य है, षट्शून्य इन षट् शून्यों में प्रथम पाँच शून्य "उ" बिन्दु, रोधिनी, नादान्त, व्यापिनी अवान्तर शून्य है, और छठा शून्य उन्मनी महाशून्य है सप्तविषुव- १ प्राणविषुव, २ मंत्रविषुव, ३ नाडीविषुव, ४ प्रशान्तविषुव, ५ शक्तिविषुव, ६ कालविषुव, और ७ तत्त्वविषुव, नवचक्र (श्रीचक्र के नवावरण) १ त्रैलोक्य मोहन (भूपुर), २ सर्वाशापरिपूरक, ३ सर्वसंक्षोभण, ४ सर्वसौभाग्यदायक, ५ सर्वार्थसाधक, ६ सर्वरक्षाकार, ७ सर्वरोगहर,

८ सर्वसिद्धिप्रद और ९ सर्वानन्दमय, और श्रीविद्यामन्त्र के अर्थों का जैसे - आचार्यों ने पन्द्रह अर्थ किए हैं वे इस प्रकार हैं- १ प्रतिपाद्यार्थ, २ भावार्थ, ३ सम्प्रदायार्थ, ४ निगर्भार्थ, ५ कौलिकार्थ, ६ सर्वरहस्यार्थ, ७ महातत्त्वार्थ, ८ नामार्थ, ९ शब्दरूपार्थ, १० नामैकदेशार्थ, ११ शाक्तार्थ, १२ सामरस्यार्थ, १३ समस्तार्थ, १४ सगुणार्थ और १५ महावाक्यार्थ इनका स्मरण करते हुए विद्यावर्णों (पञ्चदशी) का उच्चारण करना ही जप है ।।१०।।

गद्य खण्ड -: यहाँ से आगे के गद्यखण्डों में श्री विद्यामन्त्र के विभिन्न अर्थों तथा पञ्चदशी मन्त्र वर्णों के व्युत्पत्तिपूर्वक धातु प्रत्यय विचार पूर्वक अर्थप्रतिपादित किया गया है-: यथा- सर्वप्रथम बहिरंग गायत्री और अन्तरंग गायत्री

मूल -: श्रीविद्यामन्त्र पञ्चदशी की समान तुलना के साथ वर्णों की व्याख्या- यथा-:

कामयत ''इति कः'' = परं ब्रह्म, ''कं'' ब्रह्मेति श्रुतेः । कमेरौणादिको डः । जगत्सिसृक्षावान् परमेश्वरस्तत्पदार्थः काम इत्युच्यते । तदेव गायत्र्यास्तदिति शब्दार्थः। एकारस्य त्रिकोण-त्वाद्योनिरित्यर्थः । तदेव - प्राणिप्रसवकारणम् । त्रिकोणा शक्तिरेकारेण महाभगेन प्रसूते, तस्मादेकार एवगृह्यते । सवितुरिति तु प्रत्ययान्तप्रथमान्तपदस्य स एवार्थ षूञ् प्राणि प्रसवे इति धातुस्मरणात् । तच्च सर्वसम्भजनीयत्वाद् वरेण्यं सर्वप्राणिपरम-प्रेमास्पदम् । अत एव वरेण्यं इत्यस्यापि स एवार्थः । यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्। ब्रह्मांडादि कटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते इति वामकेश्वर स्मरणात् । ईयते योगिभिः सर्वान्तर्यामितयेति ''ई'' । पदानां मध्यवर्तित्वेन तुरीयस्वरेण सर्वान्तर्यामि शिवः । स एव देवस्य भर्ग इत्यनयोरर्थः । सोऽहंस्

इति देवस्येति पदमपि प्रथमान्तमेव । भर्गः-शिवः । धत्त इति धीः सर्वाधारः शिव इति देवस्य भर्गो धीरिति गायत्र्याः पदत्रयस्यार्थः । स एव तुरीयस्वरस्यार्थः। तस्माद्भर्गोदिवस्य धीत्येवमीकारः ''इति श्रुतेः । ल ''इति पृथ्वीबीजस्य ससागरं सभूधरं भूमण्डलमर्थः । भूमण्डलमित्यपि पञ्चभूतोपलक्षणम् । तदपिचमृद्घटइतिवत् परमात्मसामानाधिकरण्येन भूमण्डलोपलक्षितपञ्चभूतात्मना परिणतं परमात्मतत्त्वमेव ''ल'' इत्यस्यार्थः। गायत्र्यां महीति पदस्यापि स एवार्थः । महत्त्वात् काठिन्याच्च मही पृथ्वीति! बोध्यते ।। पृथिव्यपि

मूलम-: ''ह्रीं इति ह्रकारस्य हृदयमर्थः । तत्र हृदये ई गतौ-इट्गतौ ''इति धातोः ''ई'' इत्यस्य वासोऽर्थः । तथाच ह्रीं हृदयागारवासिनी हृल्लेखा तां माति बोधयतीति ह्रीम् परमात्मतत्त्वावभासिनी गुणत्रयातीता निर्गुणब्रह्मस्वरूपा राजराजेश्वरी । ''धियो यो नः प्रचोदयात् ''इति गायत्र्यास्तृतीय पादस्य स एवार्थः । अस्मदादीनां धियो बुद्धीः ध्यानादिरहिते निष्प्रपञ्चे वस्तुनि प्रेरयति परतत्त्वविषयकज्ञानजननीत्यर्थः । परो रजसेऽसावदोम् इति तुरीयपादस्य-गुणत्रयातीतं ब्रह्मैवार्थः रजसः परं''परोरजसे'' सोः शे इत्यादेशः । रजसोऽतीतंनिर्मलं निर्गुणमिति यावत् । रजः शब्दस्य गुणत्रयोपलक्षकत्वात् । ''सावदोम्'' इत्यस्य सवदोऽबदश्च प्रणवों बोद्ध्यते । स च वक्तुं शक्यो वक्तुमशक्यश्च । शब्दैः शक्तिमर्यादया न बोध्यः । शक्यतावच्छेदकधर्ममात्रस्य परस्मिन्नभावात । लक्षणयातु बोध्यते, सत्यज्ञानादिपदशक्य विशिष्टतादात्म्यवत्त्वात् । ''यतोवाचों निवर्तन्ते'' ''सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति'' इत्यादि श्रुतिभ्यः। अकारोकारमकारैः प्रणवे ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मकं ब्रह्मार्थः । हृल्लेखाया

अपि तदर्थः । तथा च सर्वं जगत्सिसृक्षावान् कामेश्वरः, जगत्कारणरूपा कामेश्वरी, शिवः सर्वान्तर्यामी सर्वाधारः पञ्चभूताद्यात्मना परिणतः परवस्तुविषयकज्ञानजनकोनिर्गुणो वेदैर्लक्षणया गम्यः, शक्त्याचागम्यः ब्रह्मविष्णु रुद्रात्मक इति-प्रथमकूटस्यार्थः ।।१०।।

अर्थ :- (पञ्चदशी महामन्त्र के प्रथम कूट कादिकूट जिसे वाग्भवकूट भी कहा जाता है, इसके आरम्भ में ४ बीज (ॐ ऐं ह्रीं श्रीं) अथवा-महिला आदि साधकों के लिये त्रितारी (ऐं ह्रीं श्रीं) सम्पुट लगाया जाता है यह ४ प्रणव बीज या त्रितारी त्रि =तीन - तार= ओम् वाचक है । यह संपुट कुण्डलिनीशक्ति का मन्त्र है- अस्तु -:

प्रथम कूट में- क ए ई ल ह्रीम् -। आचार्य ने विवेचन में भूमिका में कहा है चतुर्दश विद्यास्थानों में वेद प्रमुख हैं, उन वेदों में भी गायत्री-(गायन्तंत्रायते अस्माद्गायत्री स्मृता) प्रमुख है वह गायत्री भी द्विविध है जिसमें एक भाग सर्वविदित है, सुस्पष्ट है, तीनों वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की वंश परम्परा में षोडश संस्कारों में उपनयन संस्कार में वर्णाधिकार पूर्वक बटुक को गौण मुख्य कालों में स्वशाखीय वेदज्ञविद्वान् से दीक्षा दिलाई जाती है, जो लोकाचार में सुप्रतिष्ठित हो गया है, अनन्त काल से दूसरा भाग परम गोपनीय है । प्रथम भाग गायत्री बहिरंग गायत्री और दूसरा भाग अन्तरंग गायत्री, जिसे मूलविद्या पञ्चदशी मन्त्र कहते हैं। वेदसारभूत ये दोनों ही भाग वेदोक्त हैं-

शाक्तआराधना के मूलाधार हैं और सभी वैदिक सम्प्रदायों में मान्य हैं । यहाँ इस विवेचन में तत्त्वान्वेषी तथा अनुभव प्राप्त सिद्ध मान्य आचार्यों ने बहिरंग गायत्री और अन्तरंग गायत्री दोनों में प्रयुक्त वर्णों के शाक्तार्थ के साथ (वाचकार्थ) तात्पर्यार्थानुसन्धान में ऐक्य संकेतित किया है-) यथा -:

कादिकूट के प्रथम वर्ण "क" की व्युत्पत्ति सर्वप्रथम इस प्रकार

है- यथा क "यह वर्ण " कामयते- इति कः - माने परं ब्रह्म "कं ब्रह्म" यह वेदोक्ति है । यह "क" वर्ण कमु कान्तौ भ्वादि आत्मनेपद कान्तिरिच्छा इच्छा अर्थ में यह धातु रुढ़ है स्वर्गकामोज्योति- ष्टोमेन यजेत, विभूति काम-आत्मज्ञं पूजयेत् इत्यादि प्रयोग अधिकता से मिलते हैं । "कामोऽभिलाषस्तर्षश्च इत्यमरः", "कामयते इति रूपम् यहाँ कामयते- इति इस अर्थ में उणादिका डः" प्रत्यय हुआ डित्वात् टिलोप "क" वर्ण इसका अर्थ जगत् की सृष्टि करने की इच्छा वाला परमेश्वर है- तत् पद का अर्थ- काम ऐसा कहा जाता है । बहिरंगगायत्री मन्त्र का प्रथम वर्ण "तत्" का भी यही अर्थ है अर्थात् तत् -वह जगत् सृष्टि करने की इच्छा वाला परब्रह्म ।

पञ्चदशी का दूसरा वर्ण "ए" है- एकार त्रिकोण होने से गुह्य बीज योनि है वही त्रिकोणयोनि ए समस्त चराचर प्राणियों के प्रसव = प्रकृष्ट रूप से उत्पत्तिकारक" कारण है। त्रिकोण रूप शक्ति एकार रूप महाभग से प्राण्युत्पत्ति करती है इस कारण एकार का ही ग्रहण किया जाता है । बहिरंग गायत्री का दूसरा शब्द "सवितुः" इस पद में तु प्रत्ययान्त प्रथमान्त पद का अर्थात् "सविता" का या सवितृ पद का स = वह ही अर्थ अभिप्रेत है, "षूञ् प्राणिप्रसवे" इति धातु का स्मरण होने से । वह सर्वोत्पादक होने से सभी का भजनीय है, सेव्य है, इस कारण वह "वरेण्य" है अर्थात् सभी प्राणियों का परम प्रेमास्पद है इसलिये वरेण्यपद का भी वही "स " अर्थ है, अर्थात् - "वरेण्य" शब्द वृ वरणे से एण्य प्रत्यय का अर्थ सभी का वाञ्छनीय या अभिलषणीय है । वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है -

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम् ।

ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते ।।६।।

जगदद्यापि दृश्यते इति अर्थात् यह जो षोडशस्वरों में ग्यारहवाँ बीज एकार है वह त्रिकोणात्मक है, वह आधार बीज है, जिसके कारण

अनादि काल से यह जगत जो ब्रह्माण्ड से अण्ड पर्यन्त (आण्डकटाह) अर्थात् ब्रह्माण्ड से लेकर मिट्टी के ढेर तक देखा जाता है । (यहाँ तक "क ए" इन वर्णों की व्याख्या हुई "ई" का विचार -: यथा -

ईयते योगिभिरित्यादि- योगियों के द्वारा जो इच्छित हो सर्वान्तर्यामिरूप से वह "ई"। पञ्चदशी के प्रथम कूट के वर्णों में (क ए ई ल ह्रीम्) मध्य में ई वर्ण है जो तुरीय स्वर है जैसे इन वर्णों के बीच में (मध्य में) ई है वैसे शिव भी सर्वान्तर्यामी है अर्थात तन के मध्य हृदयगुफा में स्थित है। वही देव का गर्भ है यही दोनों का अर्थ है याने इन दोनों पदों का अर्थ शिव है । सु के स्थान (प्रथम एकवचन विभक्ति) में ङस् षष्ठी (विभक्ति- एकवचन) विभक्ति है भर्ग का वाचक शिव है । "धीमहि" इस पद की व्युत्पत्ति- धत्ते इति धी: = सर्वाधार: शिव इति 'देवस्य भर्गो धी इति गायत्री मंत्र के तीन पदों का यह अर्थ है, यही अर्थ भी चौथे स्वर "ई" का भी अर्थ है । वेदवाक्य भी यही है "तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकार: " इति श्रुतेः । "क ए ई" के गायत्री पदों से समानता के पश्चात् -"ल" और भर्गो देवधी: महि इन पदों का अर्थ साम्य स्पष्टकर रहे हैं - "ल" यह पृथ्वीबीज है जिसका अर्थ है लं बीजात्मक पृथ्वी जिसमें समस्त सुमेरु आदि पर्वत और समस्त सागर युक्त भूमण्डल और यह भूमण्डल भी पञ्च महाभूतों का उपलक्षण है, अर्थात् - पृथ्वी पृथ्वी के ऊपर जल जल, के ऊपर अग्नि, अग्नि के ऊपर वायु और वायु के ऊपर आकाश का द्योतक है - (उपलक्षण की परिभाषा इस प्रकार है। स्वप्रतिपादकत्वे सति स्वेतर प्रतिपादकत्वम् -उपलक्षणत्वम्) वह भी मिट्टी और उससे निर्मित घट जैसे परमात्मा और भूमण्डल में सामानाधिकरण्य है वहाँ भूमण्डल से पञ्च महाभूतों का उपलक्षण होने से पञ्चभूतात्मारूप में परिणत परमात्मतत्त्व ही "ल" इस पृथ्वी बीज का अर्थ है, इसी प्रकार गायत्री मंत्र में 'महि' इति पद का भी यही अर्थ है मही यह शब्द- निरुक्ति मार्ग से "महत्त्वात् काठिन्याच्च मही पृथ्वीति यह बोध होता है। (इस प्रकार- क ए ई ल और गायत्री मंत्र के

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि" का अर्थ साम्य व्यक्त हुआ आगे कादि कूट के "ह्रीम्" पद तथा गायत्रीमंत्र के अन्तिम (तृतीय पाद) "धियो योनः प्रचोदयात्" का साम्य प्रतिपादित कर रहे हैं- यथा ह्रीम् इति पद में- पदच्छेद से ह् र् ई ँ इसमें हकार का हृदय- अर्थ है, वहाँ हृदय में (ह् र्) "ई" (ङ्) गतौ, या इट् गतौ- "ई" इत्यस्य वास है, ई ङ् गतौ से ईयते, इट् गतौ, से अयति, इस आधार पर ईयते, इति ई, अथवा अयति असौ, "ई" (अर्थात् हृदय में ई का वास यह अर्थ हुआ और "ह्रीं" अर्थात् हृदयागार वासिनी हृल्लेखा, तां मातीति बोधयतीति- ह्रीम् अर्थात् परमात्म तत्त्व का अवभास कराने वाली सत् रज तम तीन गुणों से अतीत निर्गुण ब्रह्मरूपा राजराजेश्वरी। गायत्री मन्त्र का "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस तीसरे पाद का भी वही अर्थ है- अर्थात् यः नः धियः प्रचोदयात् - याने हम सभी की बुद्धियों को जो परमात्मा प्रेरित करे- इस शाब्दिक अर्थ का तात्पर्यार्थ यह है- कि हम सभी प्राणियों की बुद्धियों को जो ध्यान जपादि अर्थानुसन्धान से रहित तथा असत् मायिक पदार्थों में वासना ग्रस्त है उन्हें निष्प्रपञ्च वस्तु परमात्मा में प्रेरित करती है अर्थात् परतत्त्व विषयक ज्ञान जननी है **प्रातः स्मरामि देवस्य सवितुर्भर्ग आत्मनः। वरेण्यंतद्धियो यो नश्चिदानन्दे प्रचोदयात् - आद्यशङ्करा- सदाचारानुसन्धान स्तोत्रे ३** इसी गायत्री मन्त्र का परम गोपनीय चतुर्थ पाद "परोरजसेऽसावदोम्" का अर्थ गुणत्रयातीत ब्रह्म ही अर्थ है ।। इस चतुर्थ पाद की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- रजसः परं परोरजसे सोः शे इत्यादेशः - रजो गुण से अतीत निर्मल निर्गुण यह अर्थ है, यहाँ रजः शब्द तीनों गुणों का उपलक्षण है। "सावदोम्" इस पद में - सवदः- अवदः-प्रणव का वाचक ज्ञात होता है, अर्थात् वह निर्गुण परमात्मा वर्णनीय है और अवर्णनीय है, याने ब्रह्म परमात्मा का शब्दों के द्वारा या शब्द शक्ति की मर्यादा से बोध नहीं हो सकता क्योंकि वह मनोवाचामगोचरः है। केवल शब्द शक्ति से अवच्छिन्न(युक्त) धर्मता उस परमात्मा में नहीं है, अपितु त्रिविधलक्षणा द्वारा (जहत् अजहत् और जहदजहत्) लक्षणा

की परिभाषा इस प्रकार है- (मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रूढ़ितोऽर्थप्रयोजनात्-(अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपित क्रिया:- काव्य प्रकाश २/९ बोध्य होती है क्योंकि वह परमात्मा सत्य, ज्ञान- अनन्त आदि शक्त पदार्थों के विशिष्टतादात्म्य से सम्पन्न है अर्थात् वाच्य, वाचक से तात्पर्य बोध नहीं होता उसका लक्ष्यार्थ परोक्ष है वाचक शब्द से बोध्य नहीं है, गङ्गायां घोष: सोऽयं देवदत्त:, शोणो धावति उदाहरणों से वेदोक्तियाँ भी हैं यथा- यतोवाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह। (तैत्तिरीये-ब्रह्मानंदवल्ली) सर्वे वेदा यत्पदमामनान्ति तपाँ् सि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पद -ँ्-संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् (कठो० २/१५) प्रणव में अकार उकार और मकार हैं उसमें ब्रह्मा विष्णु रुद्रात्मक ब्रह्म यह अर्थ है । हृल्लेखा का भी वही अर्थ है । और सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने की इच्छावाले कामेश्वर और जगत् की कारणरूपा भगवती कामेश्वरी, शिव सभी के अन्तर्यामी हैं सभी के आधार हैं, पंचभूतात्म आदि के द्वारा परिणत हैं, परवस्तु के विषय के ज्ञान का जनक, निर्गुण-वेदों के द्वारा लक्षणा से बोध होने योग्य और शक्ति से (अभिधा) अगम्य ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मक वह ब्रह्म है, यह प्रथमकूट का अर्थ है ।

मूल ११ गद्यखण्ड अंतिम भाग-

एवं श्रीविद्याया: द्वितीय कूटस्थब्रह्मशिववाचि प्रथम हकारस्य गायत्र्यास्तत्पदस्य च शिवोऽर्थ:, सकारस्य सवितुरित्यस्य च सवितार्थ:, ककारस्यवरेण्यमित्यस्य च सर्वसंभजनीय सर्वप्राणि-परप्रेमास्पदमित्यर्थ: । द्वितीय हकारस्य "भर्गो देवस्य धी " इत्यस्य च सर्वान्तर्यामिसर्वधारक:शिवोऽर्थ: । परिसृताहविषापा-वितेन प्रसंकोचे गलिते वै मनस्त:। सर्व: सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति ।। १५ ।। त्रिपुरोपनिषद् तृतीयकूटे सकेत्याभ्यां तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीत्यन्त गायत्र्या अर्थ उच्यते । सकारेण कामेश्वर: सर्वजगद्योनि: । ककारेण सर्वधारक:

सर्व प्राणिप्रेमास्पदं शिवः, द्वितीय तृतीयकूटयो र्ल ह्रीं इत्येताभ्यां पूर्वोक्तरीत्या पञ्चभूताद्यात्मना परिणतः परमात्मैवार्थो बोध्यते, उभयत्रापि हृल्लेखाभ्यां गायत्र्या अर्थः पञ्चदश्याः कूटत्रयेण बोध्यते । त्रिपुरोपनिषद्ययमर्थो निरूपितः। देवी भागवते च ''सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्याञ्चधीमहि, बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ''इति ह्याद्यायाः श्रीविद्याया एव ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपादितम् ।।

इस प्रकार श्रीविद्या के द्वितीयकूटस्थ (ह स क ह ल ह्रीम्) प्रथम जो हकार है वह ब्रह्म और शिववाचक है और गायत्री का ''तत्'' पद का शिव अर्थ है। हादिकूट के सकार का और गायत्री मन्त्र के ''सवितुः'' इस पद का सविता (सूर्य) है, इसी प्रकार हादि कूट के ''ककार'' का और गायत्री मन्त्र के ''वरेण्यम्'' का सभी प्राणियों का सभी प्रकार से सेव्य और समस्त प्राणियों का परम प्रेमास्पद यह अर्थ है । हादिकूट नामक पञ्चदशी के इस कूट में स्थित दूसरे ''हकार'' का और गायत्री के ''भर्गो देवस्य धी'' इन दोनों का अर्थ- सभी का अन्तर्यामी और सभी का आधार शिव है ।

पञ्चदशी मंत्र के तीसरे कूट सादिकूट (शक्तिकूट स क ल ह्रीम्) में ''स क'' इन दो पदों का और गायत्री के तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी'' गायत्री कहा जाता है तथा- पञ्चदशी के तीसरे सादिकूट के प्रथम ''स''-कार का अर्थ कामेश्वर जो सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण हैं और द्वितीय ''क'' कार का अर्थ सभी को धारण करने वाले समस्त प्राणियों के परमप्रेमास्पद शिव हैं । द्वितीय कूट के अंतिम पद ''ल ह्रीं'' और तृतीयकूट के अन्तिम दो पद ''ल ह्रीं'' इन दोनों कूटों के दो-दो अन्तिम पदों का अर्थ पूर्वोक्त रीति से पञ्चभूतादि- रूप से परिणत परमात्मा ही है। और दोनों कूटों अंतिम दोनों- ह्रीं-ह्रीं और गायत्री के चतुर्थचरण 'परोरजसेऽसावदोम् ' का अर्थ गुणत्रय से अतीत पर ब्रह्म ही अर्थ है । और तीन पादों-तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि-धियो यो नः प्रचोदयात्

और चतुर्थचरण "परोरजसेऽसावदोम् और पञ्चदशी के तीनों कूटों से ऊद्ध्वोक्त अर्थ ज्ञात होते हैं। त्रिपुरोपनिषद् में यही अर्थ व्यक्त किया गया है ।

त्रिपुरोपरिषद् -

एका सा आसीत् प्रथमा सा नवासीदासोनविंशदासोनत्रिंशत् ।
चत्त्वारिंशदर्थ तिस्त्रः समिधा उशतीरिव मातरो मा विशन्तु ।।३।।
ऊर्ध्वज्वलज्वलनज्योतिरग्रे तमो वै तिरश्चीनमजरं तद्रजोऽभूत् ।
आनन्दनं मोदनं ज्योतिरिन्द्रो रेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति ।।४।।

तथा देवी भागवत में - "सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्याञ्च धीमहि, बुद्धिं या नः प्रचोदयात्" इस प्रकार निश्चित रूप से आद्या श्री विद्या का ही ब्रह्मरूपत्व पञ्चदशी मंत्र और गायत्री मन्त्र से प्रतिपादित हुआ है ।।११।।

१२ गद्यखण्ड-: एवं प्रकाशविमर्शात्मकस्या तत्त्वस्या प्रकाशांशभूता- वामाज्येष्ठा रौद्र्यस्तिस्त्रः शक्तयो, ब्रह्मविष्णुरुद्राः पुरुषाः, तत्समष्टिः शान्तात्मिका शक्ति तुरीया विमर्शांशभूता। इच्छाज्ञानक्रियास्तिस्त्रः शक्तयः तद्भार्यात्वेन भारती पृथ्वी रुद्राण्यः स्त्रीरूपाः प्रसिद्धाः तत्समष्ट्यम्बिकाशक्तिस्तुरीया ।। १२ ।।

अर्थ -: इस प्रकार प्रकाश और विमर्शात्मक तत्त्व की प्रकाशांश भूता-वामाज्येष्ठा और रौद्री ये तीन शक्तियाँ हैं, इन तीनों शक्तियों के तीन पुरुष हैं- ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन शक्ति और पुरुषों की समष्टि शान्तात्मिका शक्ति है जो तुरीया है और विमर्शांशभूता है । इच्छा, ज्ञान, क्रिया इन शक्तियों की भार्या रुप से स्त्रीरूप में प्रसिद्ध-भारती, पृथ्वी, और रुद्राणी हैं, और इनकी समष्टि रूपा अम्बिका शक्तितुरीया है ।। १२ ।।

१३, १४, १५ - गद्य खण्ड - मूल -:

प्रथममिथुनत्रयं ईकारविनिर्मुक्त कूट त्रयस्य क्रमेणार्थः । ईकाराणान्तु तुरीयमिथुनमर्थः। वक्ष्यमाणे शाक्तेऽर्थे त्वेकैकस्मिन्नपि- कूटेरेफान्त वर्णषट्कस्यापि मिथुनत्रयमर्थ इति भेदः। वामेच्छे

ब्रह्मभारत्यौ ज्येष्ठाज्ञाने हरिक्षिती, रौद्रीक्रिये शिवापर्णे त्रिभिःकूटैः क्रमान्मिथुनत्रयं वाच्यम्। हृल्लेखास्थैरीकार त्रितयैस्तु तत्समष्ट्या-त्मकं शान्तांबिकात्मकं बोध्यम् । वामेच्छाद्याः षडीकार इति सप्तभिरक्षरे त्रिरावृत्तैरियं विद्या सञ्जाता । तेन तन्मयी वामादि सप्तशक्तीनां समष्टि परदेवता षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपादस्मान्मात्रयापि भिद्यते। मन्त्रे तृतीयवर्णस्य तुर्यस्वरस्य ज्येष्ठा शक्ति वाचकत्वेन वामादि षट्कान्तःपाति त्वेनावशिष्टानां हृल्लेखास्थानामेव कामकलानाम् ईकार पदेन परामर्शान्त्रिरावृत्तैरिति संख्याविरोधः ।।१३/१४।।

ककारस्य वामात्रिकोणाया इच्छातुर्यस्वरस्यज्येष्ठालकारस्य ज्ञानानि त्रिरावृत्तैहृल्लेखास्थैरीकारै रौद्रीक्रिये सर्वसमष्टिरूपा च। न च शाक्तार्थेन पौनरुक्त्यं, तत्र वामादिषट्कं कामकलाया-अभिन्नमिति वाक्यार्थः । अत्र तु वामादिकामकलान्तसप्तकाभिन्नो मन्त्रः षट्त्रिंशत्तत्त्वाभिन्नमात्रभिन्न इत्यर्थ - इति भेदात् ।।१५।।

- १६वाँ गद्य - अथवा०-

अर्थ -: प्रथम जो मिथुनत्रय हैं ईकाररहित तीनों कूटों के क्रमशः अर्थ हैं- और जो चतुर्थ मिथुन है ईकारों का अर्थ है, आगे कहे जाने वाले शाक्तार्थ के निरूपण के अवसर आने पर तो एक-एक कूट में भी रेफ तक छह वर्णों का भी तीन मिथुन रूप अर्थ भेद है, अर्थात् कादि, हादि और सादिकूट में यथा कादि कूट में क, ए, ई, ल, ह ,र् हादिकूट में ह, स, क, ल, ह, र् सादिकूट में स, ह, क, ल, ह, र् - इनमें तीन मिथुन हैं- और ये व्यष्टिरूप हैं- यथा- वामा, इच्छा, ब्रह्मा, भारती, ज्येष्ठा, ज्ञाना, विष्णु, पृथ्वी, रौद्री, क्रिया, रुद्र(शिव), अपर्णा (पार्वती) तीनों कूटों से (कादिकूट- वामादि, भारती तक) (हादिकूट- ज्येष्ठा से पृथ्वी तक), (सादिकूट- रौद्री से अपर्णा तक), हृल्लेखा (ह्रीम्) स्थित तीन ईकारों से उनकी समष्टि रूप शान्ता अम्बिका रूप जानना चाहिए । वामादि अपर्णा पर्यन्त तीनों मिथुन व्यष्टि रूप हैं । वामेच्छा आदि छह

और ईकार इस प्रकार सात अक्षरों से तीन आवृत्तियों से यह श्रीविद्या हुई इससे मंत्रराज से अभिन्न (**अभेदार्थे मयट्**) वामादि छह और ईकार इस प्रकार सात शक्तियों की समष्टि पद देवता छत्तीस तत्त्वरूपा यह इस रूप से लेशमात्र भी भिन्न नहीं है । अर्थात् इसका भाव यह है कि देवी, मन्त्र और जगत् में अभेद है सुस्पष्टतया यह व्यक्त है कि परात्पर शक्ति पूर्वोक्त सात शक्तियों से अभिन्न है, वह शक्ति (परात्परात्मिका) छत्तीस तत्त्वों से अभिन्न है याने जगत् से अभिन्न हैं और वह शक्ति पञ्चदशी मन्त्र से भी अभिन्न है । मन्त्र में षोडश- (पञ्चदशी के पञ्चदश वर्ण तीन कूटों में तथा चार ईकारों से संयुक्त परात्परशक्ति का वर्णमय रूप है अतः अभिन्न है । मन्त्र में तृतीय वर्ण जो तुरीय स्वर हैं (कादिकूटादि कूटत्रय में तृतीय वर्ण जो चतुर्थस्वर ईकार है, वह ज्येष्ठा शक्ति का वाचक है, वामादि षट् युग्मों के बीच में स्थित है इनमें हल्लेखा (ह्रीं) मध्य में स्थित है जो कामकला के रूप में ईकार परामृष्ट होता- अतः मन्त्रगत ई पद के बाद ह्रीं -ह्रीं-ह्रीं में ईकार त्रिरावृत्ति और मन्त्रगत ई की आवृत्ति संख्याविरोध नहीं होता (१३/१४ गद्य खंड)- (१५वाँ गद्य खंड)- ककार-वामा, त्रिकोण (ए) इच्छा, और तुर्यस्वर- (ई) ज्येष्ठा और जो लकार है वह तीनों कूटों में तीन बार आवृत्त है, जो ज्ञाना से और तीन बार आवृत्त ह्रींकार में स्थित ईकारों से रौद्रीक्रिया सभी समष्टि रूप हैं ।। (१५वाँ गद्य खंड) + न च - मन्त्र का शाक्तार्थ (शब्द में शक्ति होती है, मन्त्र के शब्दों में रुढ़ि से अर्थ प्रबुद्ध होगा वह उसकी शक्ति है) अनुसन्धान करने पर ईकार का पौनरुक्त्य तो होगा क्योंकि शाक्तार्थ की भूमिका में ईकार का चार बार आवर्तन होने से पुनरुक्ति सुस्पष्टतया आवृत्त होती है- किन्तु यहाँ शाक्तार्थ से भी पुनरुक्ति नहीं होगी क्योंकि वहाँ वामादि षट्क-युग्म कामकला "ई" से (समष्टि कामकला है) अभिन्न है- वाक्यार्थ है यहाँ तो वामा से कामकला तक सप्तक से अभिन्न मन्त्र छत्तीस तत्त्वों से अभिन्न है यह मान्य है- अथवा- (मूल)- (१६वाँ गद्य खंड)-

१६ गद्यखण्ड-: शिवशक्ति समष्टि जन्यत्वान्- मन्त्रराजः

स्पन्दश्च तद्व्यष्टिरूपे शिवशक्तिमयौ । तेन जगन्मन्त्रदेवी-नामभेदभावनं भावार्थः । तदुक्तं

योगिनी हृदये (२/२३/२५)..... चलत्ता संस्थितस्यतु। धर्माधर्मस्य वाच्यस्य विषामृतमयस्य च । वाचकाक्षरंसंयुक्तेः कथिता विश्वरूपिणी ।। तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिं तु मात्रिकाम्। कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम् । आद्यां शक्तिं भावयन्तो भावार्थ इति मन्वते ।।- इति- । तदर्थो वरिवस्यारहस्ये पराहन्तेत्यादि भावार्थकत्वतलादिवाच्यत्वाद्धर्मः शक्तिर्निर्धर्मकत्वादधर्मः शिवः शक्तिरहितस्य शिवस्य स्पन्दनाक्षमत्वाद्भवस्पन्दं प्रति शक्तेः कारणतावच्छेदकत्वात्कारणत्वम् तेन जननमरणादिक्लेशमय-संसारजनकत्वाद्विषं शक्तिस्तद्विनिर्मोकादमृतं शिवस्तदुभयस्य वाच्यस्य वाचके ये अक्षरे हकाराकाररूपे ताभ्यां व्यस्ताभ्यां तदुभयसमावेशरूप कामकलाक्षरेण चास्यचलत्ता संस्थितस्य नश्वरतायुक्तस्य जगतो मन्त्रराजस्य च सम्यक् परिणामपरिणामि-भावेन युक्तेः सम्बन्धादेषा विद्या विश्वरूपिणी एकाकारेणो-भयोरभेदतः-शिवशक्तिसामरस्यरूपस्य पराशक्त्यादिपदवाच्यस्य कारणस्य कार्याभ्यां विश्वाविद्याभ्यामभेदात् इति ।।१६।।

व्यस्ताभ्यां -: अथवा दूसरे प्रकार से विचार करने पर शिव के समायोगरूप समष्टि से जन्य होने के कारण मन्त्रराज (पञ्चदशी श्री विद्या) और स्पन्द (जगद्विस्तार) उनके व्यष्टि रूप हैं- शिवशक्तिमय हैं- (सौ.ल.४१) सनाथाभ्यांजज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् । इससे जगत्, मन्त्र और देवी की अभेद भावना- "भावार्थ" है- (भाव+ अर्थ- भावो जन्म-भावः-सत्तास्वभावाभिप्रायन्वेष्टाजन्मसु - इत्यमरः) स एव (अर्थः प्रयोजनं ज्ञेयत्वाद्यत्र सः-अर्थोज्ञेयो यत्रेतिवा- अर्थोऽभिधेयवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु- इत्यमरः) -इसलिये "योगिनी हृदय" में कहा गया है- यथा-

(२/२३-२५)....... चलत्तासंस्थितस्य तु । धर्माधर्मस्यवाच्यस्य

विषामृतमयस्य च वाचकाक्षरसंयुक्तेः कथिता विश्वरूपिणी । तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिं तु मातृकांकूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम्। आद्यांशक्तिं भावयन्तो भावार्थ इति मन्वते अर्थात् -चलत्ता इत्यादि का अर्थ- "वरिस्यारहस्य" में पराहन्ता० इत्यादि पराहन्ता-इत्यादि में पराहं- इसमें तल् प्रत्यय है जो भावार्थक है । तल, त्व =आदि प्रत्ययों से वाच्य होने से धर्म ही शक्ति है । और शक्ति रूप धर्म(त्व-तल् बोध्य) से रहित अधर्म-याने धर्म- शक्ति रहित, शिव के स्पन्दन- जगत् सृष्ट्रत्वरहित- अर्थात् जगत्सृष्टि करने में अक्षम होने से जगत्सर्जन के प्रति शक्ति के कारणतारूप धर्म से युक्त होने के कारण ही कारणत्व है- सौ.ल. प्रथमश्लोक में - "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं- न चेदेवं देवो- न खलु कुशलः स्यन्दितुमपि"० यही श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी भी व्यक्त कर रहे हैं विषामृत-मयस्य - धर्माधर्मवाच्य - शिवशक्ति- के- अर्थात् जननमरणादि क्लेश मय संसार के जनक होने से विष शक्ति और उसके जगत् के रहित होने से अमृत शिव इन दोनों के वाच्य वाचक ये दो अक्षर हैं- हकार और अकार, इन दोनों के व्यस्त वर्णों के समावेश रूप कामकलाक्षर से और चलत्तासंस्थित अर्थात् नश्वरतायुक्त जगत का और मन्त्रराज का (पञ्चदशी) सम्यक् रूप से परिणाम (जगदुत्पत्ति) और परिणामि- (जगदुत्पादक) भाव से युक्त होने के कारण से, सम्बन्ध है उस सम्बन्ध से यह पञ्चदशी श्रीविद्या विश्वरूपिणी है और दोनों के शिवशक्ति के हकाराकार के अभेद होने से शिवशक्ति के सामरस्य रूप पराशक्ति, जगदम्बा आदि पदों से वाच्य कारण का, विश्व और विद्या से अभेद होता है ।।१६।।

१७ गद्यखण्ड-ः मूलमन्त्र :- ब्रह्मपरिणामभूता सृष्टिर्द्वेधा अर्थमयी शब्दमयी च, चक्रमयी देहमयी चेति । सृष्टिद्वयन्तु बालक्रीडनकार्थे स्थूलगृहसमानाकारत्वेन-सूक्ष्मगृहनिर्माण तुल्यमर्थसृष्ट्यन्तर्गतमेव ततो न भिन्नम् । पूर्वोक्ता द्विविधापि सृष्टिः

समकालीनोक्ता समकालीनाभिवृद्धिशालिनी च । यथा बीजांकुरच्छाये । छायादर्शनेन वृक्षानुमितिदर्शनात् छायायां वृक्षसमानाकारत्वं वृक्षाविनाभावञ्च बिनाऽनुपपन्नमिति तदद्वयमपि कल्प्यते । तद्वत् शब्दोऽप्यर्थविना भूतः अर्थज्ञानजनकज्ञान विषयत्वात् ''वागर्थाविव सम्पृक्तौ०'' इति महाकवि कालिदास प्रयोगदर्शनाच्च । तथार्थसमानाकारोऽपि यावन्तः शब्देऽवयवाः, तावन्तोऽर्थे तज्ज्ञाने चान्युपेतव्याः । यथा चैत्रस्तण्डुलं पचति'' इत्यत्र चैत्रपदं ''सु'' प्रत्ययः, तण्डुल पदं ''अम्'' प्रत्यय पचि ''धातुः''(डुपचष् पाके) ति ''प्रत्ययश्चेति''(तिप्) षडवयवात्मकस्य-वाक्यस्य ''चैत्र'' कर्तृत्वं, तण्डुलः, कर्मत्वम्, तेजः संयोगः कृतिश्चेति विशकलिताः षडर्थाः, तेषां परस्परमभिव्यहारस्य तु परस्पर सम्बन्ध विशेषोऽर्थः, तत्तत्पदार्थविशिष्टा भावनैव वाक्यार्थः इति मीमांसकाः, एवं तज्ज्ञानमपि षट्पदार्थांस्त तत्-सम्बन्धादींश्च विषयीकुर्वत्तत्स- मानाकारं भवति, अन्यथा ज्ञानानां परस्परं वैलक्षण्यानुपपत्तेः, अन्तःकरण परिणामविशेषरूपे ज्ञाने तत्तदाकारत्वेन परिणतत्व कल्पनसम्भवाच्च । अतएव चैत्रस्तण्डुलं पचतीत्याकारं ज्ञानमिति सकल तान्त्रिकाणां व्यवहारः । अनयोः सृष्ट्योर्ज्ञान जनकन्तु मन एव । तच्च शब्दं श्रोत्रद्वारैव गृह्णाति अर्थन्तु कञ्चन चक्षुरादिद्वारेति विशेषः ।।१७।।

अर्थ -: यह सृष्टि ब्रह्म की परिणामभूता है परिणमित सृष्टि दो प्रकारों की है - १- अर्थमयी सृष्टि और २ - शब्दमयी सृष्टि तथा एक चक्रमयी- (रेखामयी नवावरणी) और दूसरी देहमयी अर्थात् अंग, वस्त्र आभूषणादिमयी ये सृष्टि के दो प्रकार तो ऐसे हैं जैसे बालकों के खेलने के लिये स्थूल घर के समानाकार सूक्ष्मगृह के निर्माणतुल्य है अतः सूक्ष्मसृष्टि के अन्तर्गत ही है उस स्थूलसृष्टि से भिन्न नहीं है । यह पूर्वोक्ता द्विविधा सृष्टि भी समानकाल में उत्पन्न होती है और समान काल में

अभिवृद्धि भी प्राप्त करती है जिस प्रकार बीज और उसका अंकुर तथा उसकी छाया समानकाल यह है कि बीजवपन के बाद उसका अंकुर जब उद्भिन्न होता है तभी देखनेवाला अंकुर देखकर उसी देखने के क्षण समान काल में वृक्ष की कल्पना करता है, कि शाखा प्रशाखा पत्र पुष्प फलादिवाला होगा और उसी क्षण में भी उसकी घनी छाया की कल्पना होती है तथा आगे और भी समीहाएँ होने लगती हैं तो छाया का प्रत्यक्ष दर्शन होने से वृक्ष के रूप का अनुमान होते देखा गया है छाया में वृक्ष के समानाकारत्व और वृक्ष के विना छाया का न रहना ये दोनों ही कल्पित हो जाते हैं, इसी प्रकार शब्द भी अर्थ के बिना अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि अर्थ के जनक ज्ञान की जनकता शब्द में ही है महाकविकालिदास ने भी यही कहा है- वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये । जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ (र.व.म.का.१/१) श्री रामचरितमानस में भी गिरा अरथजलवीचिसमकहियत भिन्ननभिन्न" एक और उक्ति इस विषय में है- "परस्पर तपःसम्पत्फलायितपरस्परौ, प्रपञ्चमातापितरौ प्राञ्चौ जायापती स्तुमः" अप्पय्य दीक्षित । इसी प्रकार अर्थ की समानाकारता भी अभिन्न है । जितने शब्द में अवयव हैं (धातु, प्रत्यय, आदि) उतने अर्थज्ञान में मानना चाहिए । जैसे "चैत्रः तण्डुलं पचति" इस वाक्य में- चैत्र पद "सु" प्रत्ययान्त है तण्डुल पद "अम्" प्रत्ययान्त है, और पचति पद में पच् धातु है उसमें "तिप्" प्रत्यय है, इस तरह छह अवयवात्मकवाक्य का कर्ता चैत्र है, तण्डुल कर्म है ।। और अग्नि का संयोग कृति है अर्थात् क्रिया है पचनरूप इस प्रकार ये छह अर्थ शब्द समूह इनका क्रमशः अर्थ कर्तृत्व, कर्मत्व, तेजःसंयोग, कृति और विशकलित-(क्लिन्नत्व) सभी परस्पर विशेष रूप से संयुक्त होंगे तो विशेष अर्थ होगा। वह-यह पदार्थविशिष्ट भावना ही वाक्यार्थ है, ऐसा मीमांसक मत है । इस प्रकार वह ज्ञान भी छह पदार्थों का और उन छह पदार्थों के आपसी सम्बन्धों को विषय करते हुए पूरा वाक्य एक समानाकार होता है यदि ऐसा न हो तो छह पदार्थों का और उन छह

पदार्थों को आपसी सम्बन्धों को विषय करते हुए पूरा वाक्य एक समानाकार होता है, यदि ऐसा न हो तो छह पदार्थों का अलग-अलग जो ज्ञान होगा, उससे परस्पर जो समानतारूपविलक्षणता है वह सिद्ध न हो सकेगी अर्थात् उदाहरण रूप यह वाक्य- जो दिया गया है-चैत्रः तण्डुलं पचति इससे जो आर्थी भावना है वह नहीं बन पावेगी । परस्पर जो तीन शब्द हैं वे विशृंखलित होकर उद्देश्य पूर्ति नहीं कर सकेंगे, अन्तःकरण में जो परिणाम स्वरूप विशेष ज्ञान में उस उस आकार का होने से परिणत होने की कल्पना सम्भव हो सकेगी, इसी कारण "चैत्रस्तण्डुलंपचति" इस प्रकार का ज्ञान ही समस्ततान्त्रिकों का व्यवहार है । भाव यह है कि अलग-अलग शब्द व्यष्टिरूप है उनके समष्टि यह होगी, कि उन उन शब्दों का परस्पर सम्बन्ध रूप ऐक्य हो उससे जो अन्तस्तल में वाक्य का गूढ़ अर्थ लक्ष्यार्थात्मक व्यक्त होगा जो समष्टि का मूल अभिप्राय है शाब्द-बोध के बाद अर्थ-बोध मुख्य अभिप्राय होता है । इन दोनों सृष्टियों के (शब्दमयी और अर्थमयी-चक्रमयी और देहमयी) ज्ञान का जनक मन ही है और वह मन कर्णेन्द्रिय को आदेश देता है तो कान शब्दों को श्रवणरूप कार्य द्वारा ग्रहण कर मनको अर्पित करता है, मन बुद्धि को और बुद्धि निर्णय कर निश्चय करती है किसी अर्थ को स्वयं और किसी को नेत्रों द्वारा याने देखकर सुनता है यह विशेष है ।।१७।।

१८ गद्यखण्ड-ः मूल-ः द्वे अपि सृष्टी स्थूल सूक्ष्मसूक्ष्मतम भेदात् प्रातिस्विकं चतुर्विधे, श्रोत्रमनसोरप्यर्थान्तःपातित्वात् -चातुर्विध्यम् एवञ्च स्थूलश्रोत्रेण स्थूल शब्दस्य श्रवणात् स्थूलार्थस्य स्थूलमनसा ज्ञानम् , सूक्ष्मश्रोत्रेण सूक्ष्म शब्द श्रवणात् सूक्ष्मार्थस्य सूक्ष्ममनसा ज्ञानम् । श्रोत्रमनसोः सूक्ष्मत्वादिकन्तु शास्त्राभ्यासा-दिपाटवजन्यम् । "निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः" (पा.यो.सू. १/४७), "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" योग सूत्रयोरेतत्स्पष्टम् " श्रुतिरपि-यथा -ः चत्वारिवाक्परि- मिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये

मनीषिणः । गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'' ।।१८।।

अर्थ -: वह अर्थमयी और शब्दमयी-चक्रमयी और देहमयी-द्विविध सृष्टि भी स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम इन भेदों से विशिष्ट रूप में या अपने निजी रूप में चार प्रकार की होती हैं, इस प्रकार ये जो चार प्रकार हैं- वे श्रोत्रेन्द्रिय और मन के अर्थ के अन्तर्गत होने से होते हैं- इस प्रकार स्थूल श्रोत्र (स्थूल देहगत कर्णेन्द्रिय) से स्थूल शब्द का (विभिन्न मनुष्यों की विभिन्न भाषागतशब्द और विभिन्न आधारों से होने वाली ध्वनिरूपशब्द) श्रवण होता है स्थूल अर्थ का स्थूल मनसे ज्ञान होता है सूक्ष्म श्रोत्र से सूक्ष्म शब्द का श्रवण सूक्ष्म अर्थ का सूक्ष्म मन से ज्ञान होता है, श्रोत्र और मन का सूक्ष्मत्व, सूक्ष्म तत्व और सूक्ष्मतमत्व, शास्त्राभ्यास की कुशलता, चतुरता आदि से जन्य है, इसीलिये योगदर्शन में दो सूत्र हैं- ''निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः'' (पा.यो. सू. १/४७) अर्थात् निर्विचार की प्रवीणता से अध्यात्म की प्रसन्नता होती है निर्विचार वह है जहाँ गुणद्वयजन्य इष्टानिष्टफलरूपमल, और आवरणों का क्षय होने पर प्रकाशरूप बुद्धिका सत्त्वप्राधान्य से रजस्, तमस् से अभिभूत (तिरस्कृत) न होकर स्वच्छ स्थिर प्रवाह में आत्मा में बुद्धि में वर्तमान रहना अतः प्रसाद की अनुभूति होती है दूसरा सूत्र है ''ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'' (पा.यो.सू.१/४८) अर्थात् उस अध्यात्म प्रसाद में ऋतम्भरा याने सत्य को धारण करने वाली बुद्धि; जिसे प्रज्ञा कहते हैं उस प्रज्ञा का लाभ होता है, असत् -अज्ञान, भ्रम, विपरीतज्ञानादि उपाधिग्रस्त बुद्धियों का परिष्कार होकर विशुद्ध तात्पर्यग्राहिणी बुद्धि प्रज्ञानाम्नी का उदय होता है। वेद में भी उक्ति है- यथा- चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।

अर्थात् - चार वाणियाँ (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी) समस्त पद (सुबन्त और तिङन्त) सीमित हैं (अनुबद्ध है) उन वाक् सीमित पदों को मनीषी विद्वज्जन जानते हैं । उन चार वाणियों में तीन

(परा पश्यन्ती मध्यमा) हृदयगुहा में स्थित है चौथी वैखरी वाणी मनुष्य बोलते हैं ।।१८।।

१९ गद्यखण्ड -: मूल-: वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परा इति चतुर्विधा वाचः, एतदर्थाअपि चतुर्विधा विज्ञेया । मस्तकाद्यवयवेन्द्रिये प्राणदशकंशब्दशालित्वं स्थूल जगदादिव्यक्तौ सद्योजातशिशौ पिपीलिकादौ चेत्यविवादम् । इयाँस्तु भेदः-स्थूले, स्थूला, अवयवाः सूक्ष्मे तु सूक्ष्माः । तथा च वैखरीरूपघटपदवाच्यापेक्षया मध्यमादिरूपघटपदैर्वाच्या घटा युक्तिभिः कल्प्याः । तेचार्थाः संकोचं गच्छन्तः केचिदस्पष्टनिखिलावयवकाः केचितु संकुचज्जलूकाकमठादिवत्-अस्पष्ट किञ्चिदवयवकाः अप्यवयवन्यूनाधिकभावेन परिणाम भेदेऽपि द्रव्याभेदस्य मीमांसकादिभिरप्यङ्गीकारात् । यथायथमूहनीयम् ।। १९ ।।

अर्थ -: वेदोक्त जो चार वाणियाँ हैं- वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा ये चार प्रकार की वाणियाँ हैं इनमें तुरीय (चतुर्थ) वाणी वैखरी है, क्योंकि वेद में सृष्टिक्रम ही स्वीकार्य है अतः प्रथम परा, द्वितीय पश्यन्ती, तृतीय मध्यमा और चतुर्थ वैखरी हैं, इन चारों वाणियों के अर्थ भी चतुर्विध हैं- यथा - मस्तकादि अवयव, और इन्द्रिय तथा प्राण दशक (पञ्चप्राण पञ्च उपप्राण-प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नागकूर्म, कृकल देवदत्त धनंजय) ये स्थूल जगत् की अभिव्यक्ति में तत्काल पैदा हुए शिशु में पिपीलिका (चींटी, झींगुर आदि) आदि में यह विशेष है । इतने भेद तो स्थूल में स्थूल अवयव और सूक्ष्म में सूक्ष्म अवयव और वैखरीरूप घट पट शब्दों से वाच्यों की अपेक्षा से मध्यमादि रूप घटपट शब्दों से वाच्य घट पट आदि की युक्तियों द्वारा कल्पना करनी चाहिये । ये जो अर्थ हैं- संकोच ग्रहण करने में अपने अवयवों का भी संकोच कर लेते हैं, कुछ तो संकुचित होने वाली जलौका (जोंक-खूनचूसती हैं) या कछुए जैसे अपने शरीर को संकुचित कर लेते हैं कहीं फैला लेते

हैं न्यूनाधिक रूप से घटते बढ़ते रहते हैं, पर परिणाम का भेद होने पर भी द्रव्य का अभेद रहता है यह मीमांसक आदि भी स्वीकार करते हैं ।।१९।।

यथायथ कल्पना कर लेना चाहिये अर्थात् किसी भी रीति से किसी भी प्रकार कल्पना कर लेनी चाहिये ।।

२० गद्यखण्ड - मूल -: चतुर्ण्णां वाचकानां चतुर्भ्यो वाच्येभ्यो भेदा अपि चतुर्विधाः । सृष्टिचतुष्टयस्यापि मूलभूतो बिन्दुर्बीजस्थानापन्नः । तस्मादपि परतः सूक्ष्मतरापेक्षया सूक्ष्मतममपि विशिष्य तद्वाचकत्वादभिन्न शब्दार्थरूपं शब्द ब्रह्मेत्यादि पदनिर्देश-विशेषस्याभावात्-अनिर्देश्यम्, अग्राह्यम्, अशब्दं, अस्पर्शम् इत्यंपास्तविशेषम् ।।२०।। स पर्यगाच्छुक्रमकाय अशब्दम-स्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरतं नित्यमगंधवच्चयत् । अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य० (कठो० १/३/१५)।

अर्थ-: इन चार वाचकों के चार वाच्यों से भेद भी चार प्रकार के हैं । इन चारों प्रकार की सृष्टियों का मूल - भूत बिन्दु बीजस्थानापन्न है- अर्थात् वह बिन्दु ही बीज है । उससे भी परे याने आगे सूक्ष्मतर की अपेक्षा से सूक्ष्मतम भी विशेषकर उस वाचक तत्त्व से अभिन्न शब्दार्थरूप शब्द ब्रह्म इत्यादि पद से निर्देश्य परब्रह्म ही है । और वह प्रकाश के एकाकार अर्थ से अत्यन्त भिन्न शब्द ब्रह्म इत्यादि पद से भी अत्यन्त भिन्न नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वेद में उस परब्रह्म को अनिर्देश्य अग्राह्य, अशब्द, अस्पर्श इत्यादि विशेष निबंध पूर्वक कहे गए हैं ।।२०।।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवंनिचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।

– कठो० १/३/१५

२१ गद्यखण्ड- मूलम् -: वस्तुतः सृष्टिद्वयमूलभूत-सूक्ष्मरूपविशेषात्मकत्वाद् अभिन्नशब्दार्थरूपं शब्दब्रह्मेत्यादि पदनिर्देश्यं परं ब्रह्मैव । तच्च प्रकाशकस्वरूपम् ''पटः स्फुरति

घटः स्फुरति'' इत्यादि प्रत्ययेन पदार्थमात्रस्फुरणस्य तत्तद-भिन्नस्यानुभवसिद्धत्वात् प्रकाशः स्फुरति इति प्रत्ययात् प्रकाश-स्यापि स्फुरणमवश्यं वाच्यम् । तच्च स्फुरणं शक्तिः प्रकाश-स्फुरणात्मकयोः शिवशक्त्योर्मिलितयोरेव जगत्कारणवत्त्वमन्य-तरस्य तत्त्वानुपपत्तेः । तथा च शुद्धस्य शिवस्य केवलायाः शक्तेर्जगत्कारणत्वं तत्र तत्रोच्यमानं शिवशक्तिरूपस्योभयात्मन एव बोध्यम् ।।२१।।

अर्थ -: वास्तव में तो दोनों सृष्टियों का मूलभूत और सूक्ष्मरूपात्मक विशेष रूप होने से अभिन्नशब्दार्थरूप शब्दब्रह्म इत्यादि नामों से पर ब्रह्म ही है, वह शब्द ब्रह्मवाच्य परब्रह्म परमप्रकाशक है चराचरात्मक जगत् का जैसे पट स्फुरित होता है बुद्धि में घट स्फुरित होता है बुद्धि में -बुद्धि मन को प्रेरित करती है, सूक्ष्म स्तरों से अग्रेषित होकर इन्द्रियों से परिचित हो कर्मेन्द्रियों से ग्राह्य होता है यही स्थूल स्तर है । इसका माध्यम वैखरी वाणी है । पदार्थ के स्फुरण का और उस उस स्फुरण से अभिन्न और अनुभव सिद्ध होने से अर्थात् परम्परया लोकप्रसिद्ध सामान्य ज्ञान से परिचित वस्तु का प्रकाश-(ज्ञान) स्फुरित होता है । इस प्रत्यय से प्रकाश भी स्फुरित होता है यह माना जाय याने प्रकाश स्फुरित होता है ? वह जो स्फुरण है वही शक्ति है। प्रकाश और स्फुरण दोनों ही मिलकर जगतका कारण बनते हैं । दोनों में से कोई एक स्वतन्त्र रूप से कारण नहीं बन सकता अपितु शिवशक्ति दोनों का उभयात्मक ही समझना चाहिये ।।२१।।

२२ गद्यखण्ड - मूल-: अहमित्यत्र प्रकाशस्वरूपः शिवस्त्व-कारस्तद्वाच्यश्च स्फुरणरूपा शक्तिः हकारस्वरूपा तत्पदवाच्या । तावेतावकार हकारौ परारूपौ सूक्ष्मतमौ । परादि सृष्टिमूलभूतस्य बीजस्थानीयस्य बिन्दु विशेषस्य तु व्यक्ताव्यक्त विलक्षणौ वाचकौ, तस्यापि जनकस्य परब्रह्मणस्तु केवलमव्यक्तावेव शून्यस्वरूपौ

वाचकौ । तयोः शून्य स्वरूपात्वादेव विसर्गरूपस्य शून्यद्वयस्य सूक्ष्मयोः अकारहकारयोरिवोच्चारणं भवति । तदुक्तं - ''अहमित्येकमद्वैतं यत्प्रकाशात्मविभ्रमः । अकारः (ककारः) सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः । हकारोऽन्त्यः कलारूपो-विमर्शाख्यः प्रकीर्तित । अनयोः सामरस्यं यत्परस्मिन्नहमि स्फुटम्। शून्याकाराद् - विसर्गान्ताद् बिन्दुप्रस्पन्दसंविदः'' इति । योगिनी-हृदयेच शून्याकारः शून्यमात्ररूपोयो विसर्गान्तः षोडशस्वरान्त्यः तस्मात् बिन्दुविशेष उत्पन्नः इति तदर्थः । विसर्गस्य अव्यक्त हकार तुल्यत्वेनाकारस्यापि तत्र सत्त्वेन षोडशस्वरकीर्तनम् । तेन अकारहकारावेवशून्याकारे कीर्तितौ वेदितव्यौ ।।२२।।

अर्थ -: अतः यह तो पूर्ण सुनिश्चित ही है, कि शुद्धशिव और शुद्धशक्ति विषय में जहाँ जगत् के प्रतिकारणता प्रतिपादित हुई है, वहाँ शिवशक्ति की सम्मिलित कारणता मानी गई और वह सभी की मान्य है, उनमें (शिवशक्ति में प्रकाश स्वरूप शिव है और अकाररूप है अर्थात् "अहम्" इसमें प्रकाशस्वरूप शिव अकार है और अकार से वाच्य हैं और उसकी वाच्य स्फुरणरूपाशक्ति हकार रूपा है और वह उस (हकार) पद से वाच्या है । वे दोनों अकार और हकार परारूप हैं और सूक्ष्मतम रूप हैं । परादि (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) जो सृष्टि हैं (नादकी), उसके मूलभूत बीज और स्थानीय बिन्दु विशेष के तो व्यक्ताव्यक्त से विलक्षण वाचक हैं, उस बिन्दु के जनक परब्रह्म के तो केवल अव्यक्त रूप से शून्यस्वरूपवाचक हैं । उन दोनों (नाद - बिन्दु) (अकार-हकार) के शून्यस्वरूपत्व होने से ही विसर्गरूप दो शून्य (:) जो शून्य हैं उनका उच्चारण अकार हकार के सदृश उच्चारण होता है। अकु हविसर्जनीयानाम्-कण्ठः - स्थानम्) अकार, हकार और विसर्ग (:) स्थान साम्य है और वह वैखरी वाक् के स्थान (कण्ठ) में है । गीता में विभूतियों में -(अक्षराणामकारोऽस्मि० १०/३३) वर्णोच्चारण में - (अं

अः इत्यचः परौ- अनुस्वारविसर्गौ) इस विषय में वचन है, कि "अहम्" यह एक है अद्वैत है यह प्रकाश है आत्मविभ्रम है अर्थात् सौन्दर्य है या लालित्य है अहम् "में अकार सभी वर्णों से अग्र गणित हुआ है । प्रकाश है, परमशिव है, और "हकार" अन्त में है (वर्णमाला का अन्तिम वर्ण) (माहेश्वर शिवसूत्रों में अकार प्रथम है और अंत में हल्" सूत्र है) हकार कलारूप है विमर्श रूप से कहा गया है । इन अकार और हकार का सामरस्य जो पर अहम् "में स्फुट है, शून्याकार अर्थात् शून्यमात्र जो विसर्ग है उसका षोडश स्वरान्त्यभाग-अः" है, उस अः से बिन्दु का प्रस्पन्दन हुआ (स्वदिकिंचिच्चलने) अर्थात् उस बिन्दु में प्रस्पन्दन है याने अल्पमात्रा में स्पन्द हुआ यह अर्थ है । विसर्ग अव्यक्त हकार के समान होने से अकार भी वहाँ है अतः उसका षोडश स्वर के साथ कीर्तन होता है इस कारण अकार और हकार ये दोनों ही शून्याकार रूप से कीर्तित हुए ऐसा जानना चाहिए (यही उनका अकार हकार का सामरस्य है) ।। २२ ।।

इसको स्पष्टतया जानने के लिए सृष्टि प्रक्रिया को समझना आवश्यक है-उदाहरण रूप में सन्तानोत्पत्ति क्रम आगे विवेचित कर रहे हैं -यथा -

२३ गद्यखण्ड-: मूल-: तथा कश्चित् पुरुषः उत्पत्स्यमान पुत्राद्यदृष्ट वशात् - उत्पादनेच्छाविशिष्टः स्वीयामुत्पादनशक्तिं "भार्यामवलोक्य स्वार्धाङ्गिन्यांस्वयमन्तः प्रविशति शुक्ररूपेण "आत्मावै पुत्र नामासि" इति श्रुतेः प्रवेश्यमानस्य स्वभिन्नत्वात् स्थूलताभेदा क्रान्तत्वाच्च नाभेदभानम् । ततस्तस्य शुक्रस्यान्तः शोणित बिन्दुरूपेणभार्या प्रविशति । तेन च स बिन्दुरुच्छूनो भवति । स ए ष बटोदुम्बरादि बीजस्थानीयः । तस्मादंकुरविशेषा-द्युत्पत्तिक्रमेण कालान्तरे पुत्राद्युत्पत्तिः ।।२३।।

अर्थ -: जिस प्रकार कोई पुरुष उत्पन्न होने वाले पुत्रादि के अदृष्ट होने से पुत्र (सन्तान) उत्पन्न करने की इच्छा (सन्तानेच्छा) युक्त होकर

अपनी प्रजनन शक्तियुक्त भार्या को देखकर अपनी अर्धाङ्गिनी में (गर्भ में) शुक्र (शुक्लबिन्दु) रूप से मानों स्वयं ही प्रवेश करता है अर्थात् शुक्र (बीज) रूप अर्धशरीर से गर्भगुहा में प्रविष्ट होता है याने गर्भाधान करता है जैसे वेद में भी "आत्मा वै पुत्र नामासि" (कौषी० २/७) प्रमाण है, प्रवेश्यमान अपने से भिन्न है, और अत्यन्त स्थूलतर भेद से घिरा है अर्थात् पांच भौतिक स्थूल शरीर का अन्तिम परिपक्वबीज (शुक्रओजयुक्त) अभेद का भान भी नहीं होता । गर्भगुहा में प्रविष्ट उस पुरुष बीज शुक्ल बिन्दु में जननशक्तियुता भार्या (अर्धाङ्गिनी) का लोहित बीज (लाल रंग का डिम्भ आर्तवबीज) रूप से भीतर (शुक्रबिन्दु) प्रविष्ट होता है अर्थात् भार्या में याने भार्या के अन्तस्तल में (गर्भ) यह दो बिन्दुओं का मिलन होता है, उससे वह शुक्र बिन्दु उच्छून होता है अर्थात् प्रतिक्षण बढ़ता है वह ऐसे ही जैसे वट, गूलर, पीपल आदि वृक्षों के बीज जैसे अर्थात् वृक्षों के बीजों के अल्पाकार होने से कालान्तर में अंकुरण के बाद वे विशाल रूप धारण करते हैं इस कारण अंकुर आदि विशेष विकास क्रम से वृक्षों जैसे उन दो शुक्लरक्त बिन्दुओं के मिलने के बाद कालान्तर में याने नवमासों के बाद पुत्रादि की उत्पत्ति होती है वंशवृक्ष भी संकेत हैं ।। २३ ।।

२४ गद्यखण्ड-: मूलम् - यथा वा सूर्याभिमुखदर्पणे तदन्तः प्रविष्टकिरणात् उभयकिरणसंकलनरूपस्तेजो बिन्दुविशेषः कुड्यादौ प्रादुर्भवति तथा प्राण्यदृष्टवशात् स्वान्तः संहृत विश्व-सिसृक्षया प्रकाशरूपं ब्रह्म स्वीयां शक्तिमवलोकयितुं तदभिमुखी-भूय तदन्तस्तेजोरूपेण प्रविश्यशुक्रबिन्दुभावमयते । ततस्तं बिन्दुं रक्तरूपा शक्तिः प्रविशति । तया (या) सम्मिश्रबिन्दुरुच्छूनो भवति। तत्र च हार्दकलारूप एकः पदार्थविशेषोभवति । स च बिन्दुः समष्टिरूपेणैकः स्फुटशिवशक्तिसामरस्यनामा कामो रविरग्निषोमात्मक इत्यादिशब्दैर्व्यवह्रियते । व्यष्टिरूपेण द्वयं तत्र

शुक्लइन्दू रक्तोऽग्निरिति बिन्दुद्वयात्मकत्वाद् विसर्ग इति च व्यवह्रियते। अतएव च रवे रात्रौ अग्नौ अमावास्यायाम् चन्द्रे च प्रवेशस्य श्रुतिसिद्धत्वात्-समष्टिबिन्दो रवित्वमेवञ्च कामाख्यो बिन्दुविसर्गोहार्दकला चेति त्र्यवयवक एकः पदार्थोऽणादि (अलादि वा) प्रत्याहारवत् कामकलेत्युच्यते । इदमेव समस्त-सृष्टिबीजम् । अत एव अकार हकारयो र्मध्ये सर्ववर्णपाठः। लकारस्य ककाररूपत्वात् क्षकारस्य कषयोः रूपत्वाच्च न तद्बहिर्भावः । एतन्मूलभूतं ब्रह्म तु तुरीयबिन्दुरुच्यते । तद्रूपाभ्यां शून्यस्वरूपाभ्याम् - अकार हकाराभ्यां - उत्पन्ना कामकला व्यक्ताव्यक्तविलक्षणा-अहम्पदवाच्या अकारहकारोभयात्मकत्वं-शिवशक्तिद्वयरूपत्वञ्चाहम्पदस्य निष्कृष्टोऽर्थः ।।२४।।

अर्थ -: अथवा दूसरे प्रकार से विचार क्रम-: यथा- सूर्य की ओर दर्पण के रखने पर प्रविष्ट सूर्य की किरणें उनसे उभयविधकिरणों के संकलनरूप अर्थात् संग्रहीत तेजोबिन्दु विशेष दीवारादि आधारों में उत्पन्न होता है याने सामान्य रूप से सूर्य प्रकाश व्यापक रहता है सूर्य की किरणें जब दर्पणादि के माध्यम से दीवारादि में दीखती है इसी प्रकार प्राणियों के अदृष्टवशात् अपने अन्तः में संहार किए गये पूर्व विश्व की पुनः सृष्टि करने की इच्छा से प्रकाशरूप ब्रह्म अपनी शक्ति को देखने के लिये शक्ति के अभिमुख होकर उसके गर्भ में तेजोरूप से प्रविष्ट होकर शुक्रबिन्दुभाव को प्राप्त होता है । इसके अनन्तर उस श्वेत बिन्दु में रक्तरूपशक्ति प्रविष्ट होती है, उस रक्तबिन्दु के मिलने से मिश्रित वह बिन्दु क्रमशः वृद्धिङ्गत होता है उसमें हार्दकला रूप एक पदार्थ विशेष होता है । (उसका स्वरूप केवल गुरुमुखैकगम्य है) और वह बिन्दु समष्टिरूप से एक है । वह स्फुट शिवशक्तिसामरस्य नामक "काम" रवि, अग्नि, सोमात्मक आदि शब्दों से व्यवहृत होता है । व्यष्टि रूप से दो बिन्दु हैं एक शुक्ल जो इन्दु है और दूसरा बिन्दु रक्तवर्ण (लालरंग) अग्नि

है। इन दोनों बिन्दुओं (:) को "विसर्ग" इस संज्ञा से व्यवहार करते हैं, अतएव रवि का रात्रि में अग्नि प्रवेश और अमावास्या (कृष्णपक्ष की १५वीं तिथि) (अमावस्या सूर्येन्दु सङ्गमः) इस वेदोक्तिवशात् - समष्टिबिन्दु का रवित्व और इस प्रकार कामाख्य बिन्दु विसर्ग (:) और हार्दकला इन तीन अवयवों से बना एक पदार्थ अण् (अलादि) प्रत्याहारों जैसे "कामकला" इस शब्द से सूचित होता है। यही समस्तसृष्टि का बीज है। इसीलिये अकार और हकार के बीच सभी वर्णों का पाठ होता है (माहेश्वरसूत्र- अइउण, ऋऌक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमण्ङणनम्, झभञ्, घढधष् जबगडदश् खफछठथचटतव्, कपय, शषसर, हल ।

वर्णमाला- अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म य र ल व, श ष स ह (क्ष) अंतिम वर्ण ह- लकार से अभिन्न रूप होने से और क्ष - कार का क और ष के योग होने से ये भी वर्णमाला से बाहर नहीं हैं। इन सभी का मूलभूत ब्रह्म तो "तुरीय बिन्दु" कहा जाता है (व्यष्टि और समष्टि का मूल- वह ब्रह्म) । उस प्रकार के शून्य रूप अकार और हकार से उत्पन्न "कामकला" व्यक्त और अव्यक्त से विलक्षण है, और अहं पद से वाच्य है अकार-हकार उभयात्मक शिवशक्ति-द्वयरूप ही "अहं" पद का तात्पर्यार्थ है । अर्थात् निष्कृष्ट अर्थ है- अर्थात् रहस्य का अभिप्राय रूप अर्थ ।।२४।।

२५ गद्यखण्ड- (अतएव) तज्जन्यानां सूक्ष्मादिस्थूलान्तानां अखिलसृष्टीनाम् अहम्पदवाच्यत्वम् । यथा उदुम्बरपदवाच्य-बीजाज्जनितानां परस्परविलक्षणानामपि पर्णकाष्ठकुसुमफल-कृमीणाम् - सर्वेषामुदुम्बरत्वम् उदुम्बरपर्णमुदुम्बर कृमिः इत्यादि व्यवहारात्-तथा च "ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्, तदा आत्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मीति" (बृहदारण्यकोपनिषदि १/४/१०) "त्वं

वाअहम्, अहं वै त्वम् " (ऐतरेयोपनिषदि) अस्मच्छब्दस्य सर्वनामताऽप्यत एव हंसः "सोऽहमित्यादिरूपेण पूर्णाअहम्भावना-रूपाउपासना प्रसिद्धा । अहमिति समाहार द्वन्द्वसमासः । "अहमेव इदं सर्वम् " इति श्रुतेश्च । विरूपाक्ष पञ्चाशिकायाम् "स्वपरावभा-सनक्षमआत्माविश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ । अहमिति स एक उक्तोऽहन्तास्थितिरीदृशी तस्य" । एतादृशस्य अहम्पदार्थस्य यथा अहमिति पदं वाचकं तथा उत्तमपुरुषस्यैकवचनमपि वाचकम् । तस्य च परस्मैपदात्मनेपदभेदेन-द्वैविध्येऽपि तिपः इटश्च इकारत्वेन अनुगमात्, इत्थमेव शक्ततावच्छेदकम् । अन्यायश्चानेकशब्द-त्वमितिन्यायात् । तस्य च धातूत्तरत्वेनोक्तं पुरुषत्वादिना वा उपस्थितिः पदार्थास्मारकत्वे तन्त्रम् । एर्णलादावपिलुप्तस्य स्मरणम्, तदभावेशक्तिभ्रमाद् बोधः । तत्र च अकारहकारयोरदर्शनेऽपि शास्त्रप्रामाण्यात् सूक्ष्मरूपौ तौ स्त इति स्वीकार्यम् । तस्यैव च हार्दकलायोगे दीर्घताऽपि सम्पद्यते - इति तुरीयस्वररस्य कामकला-रूपत्वं मन्त्ररहस्यविद्भिः प्रतिपाद्यते । तदुक्तं योगिनीहृदये-मध्यविन्दुविसर्गान्तः समास्थानमये परे । कुटिलारूपके तस्याः प्रतिरूपं वियत्कला ।। २/२१ मध्यबिन्दु कामाख्यः, तस्य तुरीयबिन्दुविसर्ग मध्यपातित्वात् समष्टेर्व्यष्टिमध्य एवान्तर्गत-त्वाच्च विसर्गो व्यष्टिरूपं बिन्दुद्वयं तयोरन्तर्मध्ये सम्यक्चैतन्या-त्मनावस्थानम् । तन्मये तत्प्रधाने परे चरमे अकार हकाररूपे अक्षरे मातृकाणां क्रमेण पाठे चरमत्वात्-हकारस्य व्युत्क्रमेण पाठे त्वकारस्य चरमत्वात् । किञ्च इमे अक्षरे कुटिलारूपके कुटिले अकुलकुले कुण्डलिन्यो तयो रूपान्तरे तस्यास्तयोः कुण्डलिन्योः इत्यर्थः ।।२५।।

अर्थ -: इसीलिये उससे उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म से स्थूल पर्यन्त

अखिलसृष्टियों का अहं पद से ही व्यवहार होता है, जैसे उदुम्बर शब्द से वाच्य बीज से उत्पन्न होने वाले परस्पर विलक्षण होने पर भी पत्ते, काष्ठ, पुष्प,फल और कृमियों का सभी का उदुम्वरत्व होता है अर्थात् उदुम्बर पत्ते , कीट आदि ऐसा ही व्यवहार होता है । इसविषय में श्रुतियाँ कहती हैं, कि ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् , तत् आत्मानमेवावेत् , अहं ब्रह्मास्मीति (बृहदारण्यकोपनिषदि १/४/१०),'' त्वंवा अहम् - अहंवैत्वम् ''(ऐतरेय)''।

''अस्मत् '' शब्द की सर्वनाम संज्ञा भी पाणिनिने रखा है, इस कारण ''हंस:सोऽहं'' इत्यादि रूप से पूर्ण जो अहं भावना है वह पूर्ण और अहं भावनारूपा उपासना प्रसिद्ध है । ''अहमिति'' अहम् पद में आदिम वर्ण अकार है, और अन्त्य ''हकार'' है इसमें समाहारद्वन्द्व समास है- क्योंकि बिन्दु का भी ग्रहण हो एतदर्थ ''अहं '' पद में समाहार द्वन्द्व समास है । इतरेतरद्वन्द्व समास नहीं श्रुति प्रमाण भी है ''अहमेव इदं सर्वम्'' अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं- पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमेवेदं सर्वम्'' (छान्दोग्ये० ७/२५/१) विरूपाक्षपञ्चाशिका में भी आती है-: स्वपरावभावसनक्षम आत्मा विश्वस्य य: प्रकाशोऽसौ । अहमिति स एक उक्तोऽहन्तास्थितिरीदृशीतस्य ''अर्थात् जो आत्मा स्व और पर के अवभासन में सक्षम है जो यह विश्व का प्रकाशरूप है, ऐसा वह एक ही है । ''अहम्'' इति पद से कहा गया है, उसकी (अहम् की) इसी प्रकार की स्थिति है'' इस प्रकार के 'अहम् ' पदार्थ वा जैसे वाचक भी है (अहमस्मि) (यदि इस उत्तम पुरुष जो अहं का वाचक है उसे विलोम क्रम में समझें तो वह ''पुरुषोत्तम हो जाता है'' ''उत्तम: पुरुषस्त्वन्य:परमात्मेत्युदाहृत:'' गीता १५।) वह उत्तम पुरुष परस्मैपद और आत्मनेपद रूप भेद से द्विविध होने पर भी तिप् - (परस्मैपद) और ''इड्'' (आत्मनेपद) इन दोनों प्रत्ययों में इत्व ही शक्ततावच्छेदक है अर्थात् इत्वधर्म इ का शक्तियुक्त है, और ''अ'' प्रकाशरूप शिव है दोनों का सामरस्य है, बिन्दु से निभालन है क्योंकि ''अन्यायश्चानेकशब्दत्वम्'' इस न्याय से ।

वह ''इ'' (दोनों तिप् और इड् में स्थित इ शब्द) धातु के बाद

विहित होने से या उत्तमपुरुषत्वादि से उसकी उपस्थिति पदार्थ के स्मरण कराने में कारण है । "एर्णलः " आदि में भी-अर्थात् "इड्" के स्थान में "ए" आदेश आत्मनेपद में, और "तिप्" परस्मैपद "इ" स्थान में "णल्" आदेश (परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः "भ्वादि. ३/४/८२) यहाँ "इ" के (परस्मैपद में तिप् के स्थान वालादेश) यहाँ "इ" के लुप्त होने पर भी इ का स्मरण होता है, उस के अभाव में शक्तिभ्रम से बोध होता है और वहाँ (उत्तम पुरुषादिवचन में) अकार और हकार के दर्शन न होने पर भी शास्त्र प्रमाण सूक्ष्मरूप वे दोनों (अकार हकार)हैं। यह माना जाने योग्य है उसी की (इ) की हार्दकला के योग से दीर्घता हो जाती है (ई) रूप होता है इसीलिये यह तुरीय स्वर (ई) कामकला का रूप है ऐसा मन्त्ररहस्यों को जानने वालों के सर्वमान्य है । जैसा कि योगिनीहृदय में (२/२१) वचन है- यथा- मध्यबिन्दु विसर्गान्तः समास्थानमये परे । कुटिलारूपके तस्याः प्रतिरूपं वियत्कला ।। २/२१) अर्थात् मध्यबिन्दु कामनामा है, वह तुरीय (ई) बिन्दु और विसर्ग के मध्य में है, समष्टि के भी व्यष्टि के मध्य माना जाता है यहाँ जो विसर्ग शब्द है वह व्यष्टि नामक दो बिन्दु है उन दोनों बिन्दुओं के मध्य सम्यक् चैतन्यरूप से अवस्थान है । तन्मय और तत्प्रधानरूप वाले चरम अकार और हकार रूप अक्षरों उल्टे क्रम से पढ़ने पर अकार चरम पद होगा- याने "ह-अ" होगा (वर्णमाला के सीधे क्रम से पाठ करने पर अ पूर्व और ह परयाने चरम होगा (अह) इसी को यदि उल्टे क्रम वर्णमाला पढ़ेंगे तो "ह" पूर्व में होगा और "अ" पर में होग। याने । ह अ । और ये दोनों अक्षर कुटिल रूप के कुटिल अकुलकुल अर्थात् अकुलकुण्डलिनी और कुल कुण्डलिनी इन दोनों का रूपान्तर है ।।२५।।

२६ गद्यखण्ड-: मूलम-: वियत्पदेन शून्याकारत्वात् "कामः" प्रतिपाद्यते । कलापदेन हार्दकलावत्वात्-विसर्गः, यतः कामविसर्गयोः कुण्डलिनी प्रतिबिम्बरूपत्वं, ततः कुण्डलिन्य-भिन्नाकार हकार रूपत्वं सम्भवतीति भावः इति वरिवस्यारहस्ये

तद्व्याख्या एवमकार हकारैकस्वरूपा कामकला । तद्भूते मन्त्रे विजातीयाक्षरवत्त्वान्यथानुपपत्त्यापि तयोर्गर्भे सूक्ष्मरूपेणान्येषां वर्णानामर्थसृष्टेश्चावस्थानं सिद्ध्यति । यथा वटबीजरूपे संपुटे पर्णकाष्ठादेः यथा च वर्ण बीजानां स्फोटेनैवांकुराद्युत्पत्तिरिति बीजस्य पूर्वोत्तरार्धयोर्वियोगे इत्यविवादम् । तच्चार्धद्वयं महति वृक्षे कस्मिन् भागेऽस्तीति तु दुर्ज्ञेयम् एवं मन्त्रांशेऽपि अकारह-कारयोरवस्थितयोः परिज्ञानाय संकेतभाषयोक्तंयोगिनीहृदये-''मध्यप्राणप्रथारूपस्य व्योम्नि स्थिता पुनः । मध्यमे मन्त्रपिण्डे तु तृतीये पिण्डके पुनः । राहुकूटाद्वयस्फूर्जत् - इति-२/२२ (तदर्थोऽपिवरिवस्यारहस्ये कलाकामयोर्मध्यस्य विसर्गस्य यः प्राणश्चैतन्यं तस्य प्रथा पृथुत्वेन श्रूयमाणता स्थूलतेति यावत् । तद्रूपं यत् स्पन्दव्योम हकारः, स्पन्दते उत्पद्यते इति स्पन्दः स्पन्दो व्योम यस्मादिति व्युत्पत्तेः । हकाराद्व्योम सम्भूतम् इत्युक्तेरिति केचित् । मध्यात्मको विसर्गाभिन्नो यः प्राणो हकारस्तस्य प्रथारूपो यः स्पन्दः स्पन्दरूपासृष्टिरित्यर्थः । तद्रूपं व्योम हकार इत्यर्थो युक्तः। हः शिवो गगनः प्राण इति मातृका कोशात् । मध्यम इत्यस्य द्विरन्वयः । तत्रैकपदं मन्त्रपिण्डेन सह सामानाधि-करण्येनान्वेति अपरं वैयधिकरण्येन मध्यमकूटस्य मध्यम व्यञ्जने द्वितीय हकार इत्यर्थः द्वितीयगेषु सप्तसु व्यञ्जनेषु तस्य चतुर्थत्वेन मध्यमत्वात्तत्र स्थिता स्त्रीलिङ्गाच्छक्तिर्विशेष्यातृतीयकूटे तु सकारेऽकारो मूलबीजीय इत्याह ।।२६।।

अर्थ -: "वियत्कले" इसमें वियत् शब्द से शून्याकार होने से काम का प्रतिपादन किया जाता है अर्थात् दोनों कुण्डलिनियों में वियत् शब्द से शून्याकारत्व होने से काम शब्द प्रतिपादित होता है और 'कला' पद से हार्दकला युक्त होने के कारण विसर्ग है, क्योंकि काम और विसर्ग दोनों ही कुण्डलिनी के प्रतिबिम्बरूप हैं । उसके अनन्तर कुण्डलिनी से

अभिन्न अकार और हकाररूप सम्भव होता है यह भाव है ऐसी "वरिवस्या रहस्य" में व्याख्या है। इस प्रकार अकार हकार मात्र स्वरूपा कामकला है । कामकला से उत्पन्न मन्त्र में विजातीय अक्षरों के होने से अन्यथा अनुपपत्ति से भी उन दोनों के गर्भ में सूक्ष्मरूपसे अन्य वर्णों की अर्थ सृष्टि की अवस्थिति सिद्ध होती है जैसे वट बीज रूप में काष्ठ पत्ते आदि विजातीय अंग होते हैं और जैसे वटबीजों के स्फोट से ही अंकुरादि की उत्पत्ति होती है तो बीज का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का पृथककरण हो जाता है । यह पूर्णरूप से विवाद रहित है उस बीज का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध उस महान् वृक्ष के किस भाग मैं है यह जानना अति कठिन है । इसी प्रकार मन्त्रांश में भी किस अकार हकार के जो मन्त्र में अवस्थित है उनके परिज्ञान के लिये संकेत भाषा में योगिनी हृदय की मंत्रसंकेत की २२ वीं कारिका में कहा गया है- यथा- मध्य- प्राण प्रथारूपस्पन्दव्योम्नि स्थिता पुनः । मध्यमे मन्त्र पिण्डे तु तृतीये पिण्डके पुनः । राहुकूटाद्वयस्फूर्जत् इति-२/२२। तदर्थोऽपि उसका अर्थ भी वरिवस्या रहस्य में व्यक्त किया है- यथा-:

कला और काम के मध्य विसर्ग का जो प्राण या चैतन्य है उसकी प्रथा अर्थात् प्रसिद्धि को विस्तृत रूप से स्फुटरूप से अवगति या स्थूलरूपता जो उसका रूप है स्पन्दात्मक व्योम हकार है । स्पन्दते उत्पद्यते इति स्पन्दः स्पन्द व्योम जिससे यह व्युत्पत्ति है । "हकाराद्व्योम सम्भूतम्" योगिनी हृदय (२/२९) कोई ऐसा कहते हैं मध्यात्मक विसर्गाभिन्न जो प्राणरूप हकार है, उसकी प्रथा (प्रसिद्धि) रूप उत्पत्ति है, अथवा- तद्रूप-व्योम हकार है, यह अर्थ ठीक है। "हः शिवो गगनः प्राण इति मातृकोष" मध्यम इसका दो बार अन्वय होगा । उसमें एक पद मन्त्र पिण्ड के साथ अन्वित होगा और यह सामानाधिकरण्य से अन्वित होगा, दूसरा वैयधिकरण्य से अन्वित होगा, मध्यम कूट (हादिकूट) मध्यम व्यञ्जन में अर्थात् द्वितीय हकार में द्वितीय कूट में स्थित सात व्यञ्जनों में (ह स क- ह ल ह र्) चतुर्थ होने से मध्यमत्व उसमें है,

उसमें रहने वाली स्त्रीलिङ्ग से शक्ति विशेष्या है, और वह मध्यम पद विशेषण तृतीय कूट में (सकल ह्रीम्) जो सकार है उसमें अकार मूल बीज का ही है ऐसा कहा है ।।२६।।

२७ गद्यखण्ड- मूलम् -: राहूकूटेऽतिलघुषोढान्यासान्तर्गत-ग्रहन्यासे राहो:शषसहाख्यवर्णचतुष्टयसहितस्य वक्त्रे न्यासः । वक्त्रेशादिचतुर्वर्णैः सहितं राहुमेव च इतिवचनात् " । तेन शादि चतुष्कं राहुकूटं तत्र द्वय भिन्नोऽद्वयस्तृतीयः सकारस्तस्मिन् स्फूर्जत्-शोभमानं नपुसंक लिङ्गबलात् ब्रह्मविशेष्यं शिव इत्यर्थः । (इत्यलमतिरहस्यार्थप्रकाशनेन- इति वरिवस्या टीकायाम्) (६७-६८ कारिकयोः) ।।

तथा च अकार हकारौ परस्पराश्लिष्टौ शून्याकारौ प्रकाश-स्फुरणात्मक शिव शक्तिस्वरूपौ वेदान्तवेद्यं ब्रह्म । तदेव विश्वसिसृक्षया स्वार्धशक्तिं विलोकयद् बिन्दुर्भवति । तमिन्दुरूपं शक्तिस्तुरक्तबिन्दुतया प्रविशति । एतत्पिण्डद्वितीयं विसर्गसंज्ञं हकारचैतन्यं मिश्रस्तु तत्समष्टिः । कामाख्यो रविरकारचैतन्यम्। एषाहं पदतुर्यस्वर कामकलादिशब्दनिर्देश्या वागर्थसृष्टि बीजम् । तेनाहन्तामयं विश्वं भवति । अन्त्य प्रथमे मध्यचतुर्थे मन्त्रेऽपि तौ व्यक्तौ । तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः ।।२७।।

अर्थ -: "राहुकूटेति" - लघुषोढान्यासान्तर्गतग्रहन्यास में राहु के "श ष स ह" नामक चार वर्णों के साथ (राहु का) मुख में न्यास किया जाता है। वक्त्रे शादिचतुर्वर्णैः सहितं राहुमेव च "इति वचनात् " (यो. हृ. ३/२४) । इससे श, ष, स, ह चार वर्णों का समूह राहुकूट है, उस राहुकूट में दो से याने श ष इन दो से भिन्न अहम अर्थात् दो से रहित तृतीय सकार, उस सकार में स्फूर्जित होता हुआ शोभित होता हुआ नपुंसक लिङ्ग के बल से विशेष्य भूत ब्रह्म या शिव को लिया जाता है यह अर्थ है । तथा अकार हकार परस्पर आश्लिष्ट हैं, शून्याकार हैं । शिव प्रकाशात्मक

हैं शक्ति स्फुरणात्मिका है, यही शिवशक्ति का स्वरूप वेदान्तवेद्य ब्रह्म है, वही विश्व निर्माण याने सृष्टिकरने की इच्छा से अपनी-अपनी अर्धशक्ति को (अर्धनारीश्वर) देखता हुआ बिन्दु होता है, उस शिव के बिन्दु रूप इन्दु में शक्ति रक्त बिन्दुरूपा शक्ति प्रविष्ट होती है (यहाँ शिव बिन्दु शुभ्रवर्ण का है, चन्द्रात्मक होने से और बिन्दु वाचक होने से चन्द्र पदों का बिन्दु पद से बिन्दु निर्देश किया है) यह पिण्डद्वय विसर्ग संज्ञक है, जो हकार का चैतन्य है और दोनों का मिश्रबिन्दु उनकी समष्टि है और रविरूप काम नामक है, वह अकार का चैतन्य है । यह इस अकार हकार (श्वेत बिन्दु-रक्त बिन्दु शक्ति) के मिश्रण से और तुर्यस्वर (ई) कामकला से निर्देश्या शब्दार्थ की सृष्टि का बीज है । उससे यह विश्व अहन्तामय होता है । अन्त्यकूट याने तृतीयकूट (सादिकूट-शक्तिकूट) (सकल ह्रीम्) इसमें प्रथम सकार और चतुर्थ ह र् ई हकार में पूर्वोक्त अक्षरों की अभिव्यक्ति होती है अर्थात् अकार और हकार की यही अहम् है । उत्तम पुरुष वाच्य है, उत्तम पुरुष का विलोम होने पर पुरुषोत्तम है, इस अहम् पद से अम्बा जगदम्बा के साथ जगत् का अभेद ही है । यहाँ मन्त्र का भावार्थ है । भाव शब्द की व्युत्पत्ति-भू सत्तायाम् "भावे घञ् भवति असौ भावः (भावः सत्ता स्वभावाभिप्रायचेष्टाजन्मसु- इत्यमरः" स एव अर्थः प्रयोजनं ज्ञेयत्वात् यत्र सः" अर्थो ज्ञेयो यत्रेति वा । अर्थोऽभिधेयैरवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु इत्यमरः" वरिवस्यारहस्य के द्वितीयांश में ६९,७०,७१,७२,७३ कारिकाओं में भावार्थ विवेचन किया गया है जिनका विशद अर्थ उपरिलिखित है, वे कारिकाएँ ये हैं-: यथा -:

अहकारौ शिवशक्ति शून्याकारौ परस्पराश्लिष्टौ । स्फुरणप्रकाश-रूपावुपनिषदुक्तं परं ब्रह्म विश्वसिसृक्षावशतः स्वार्थी शक्तिं विलोकयद्ब्रह्म। बिन्दूद्भवतितमिन्दुं प्रविशति शक्तिस्तुरक्तबिन्दुतया। एतत् पिण्डद्वितयं विसर्गसंज्ञं हकारचैतन्यम् । मिश्रस्तु तत्समष्टिः कामाख्यो रविरकार चैतन्यम् ।। एषाहं पदतुर्यस्वरकामकलादिशब्दनिर्देश्या । वागर्थसृष्टिबीजं तेनाहंतामयं विश्वम् ।। अन्त्यप्रथमे मध्य चतुर्थे मन्त्रेऽपितौ विभक्तौ ।

तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः ।।२७।।

२८ गद्यखण्ड- कामकला विमर्शेऽपि-यथा- अन्तर्लीन-विमर्शः प्रकाशमात्र तनुः पूर्णाहं भावभावनागर्भितो महेशो विश्वोत्पत्त्यादिकृत्यपञ्चककारणम् । शक्तिश्चशिवादिषट्त्रिंशत्तत्त्व-मयी सर्वप्रदञ्चात्मिका तदुत्तीर्णाच । शिवस्य जगन्निर्मातृत्वं तया शक्त्या विनानोपपद्यते । तत्र प्रकाशस्वभावस्य तु परमशिवरवेः किरण समूहः विस्फुरणशक्तिरूपे विशदे विमर्शदर्पणे प्रतिफलति। यथा लोके सूर्याभिमुखस्थितदर्पणतले सूर्यकिरण प्रतिफलनानन्तरं निकटगते कुड्ये सूर्यकिरण प्रतिहततेजो बिन्दुः प्रत्यक्षं प्रपद्यते । तथैव प्रकाशस्वरूप परमेश्वरस्य दर्पणवत्स्वरूपविमर्शसम्बन्धे जाते महाबिन्दुः पूर्णोऽहमित्येवं रूपः परमेश्वरः प्रकाशते । सितशोण-बिन्दुयुगल कामेश्वरीरूपं दिव्यमिथुनम् तदेव वागर्थ सृष्टि हेतुः । परमेश्वरः स्वाङ्गभूताखिलप्रपञ्चविलयात्मकविमर्शशक्तिमनु-प्रविश्य बिन्दुभावमयते । ततो विमर्शशक्तिरपिस्वान्तर्गत प्रकाश-मयं बिन्दुमनुप्रविशति। ततश्च बिन्दुरुत्पन्नो भवति । तस्माद् बिन्दो-र्नादात्मिका समस्ततत्त्वगर्भिणी जीवरूपा बालाग्रवत्सूक्ष्मरूपिणी भवति । बिन्दुनादस्वरूपयोस्तयोः प्रकाशविमर्शयोरहमिति शरीरं भवति । विमर्शो रक्तबिन्दुरूपतां प्रकाशः शुक्लरूपतां भजति । उभयोर्मेलने मिश्ररूपं सर्वतेजोभयं परमात्मस्वरूपं भवति । तदेव सितशोण बिन्दुसमरसीभूतो मिश्रबिन्दुरुच्यते । अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्तिः । तदुभयभूतकामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा "कामकला" प्रोच्यते । निर्विशेष प्रकाशस्वरूपो-रविरस्या मुखं शशिहुताशनरूपबिन्दुयुगलं तस्याः स्तनद्वयं तत्समरसीभावो योनिः। तदुक्तम् -: यथा -:-

मिहिरबिन्दुमुखीं तदधोलसच्छवि हुताशन बिन्दुयुगस्तनीम्।

हसपरार्धकलारचना सास्पदां भजत नित्यमिमां परदेवताम् ।।

ईकारोद्ध्र्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधो गतौ । स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्धकला भवेत् ।।२८।।(कामकलाविलास : पृ.४५)

अर्थ -: कामकला के विमर्श में भी-: परमशिव महेश, जिनके अन्तर में विमर्श लीन है, और केवल प्रकाशशरीर शरीर है , जिनके पूर्ण अहं भाव की भावना गर्भ में है, वे सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, पालन और संहार, निग्रह और अनुग्रहात्मक पंच कार्यों के कारण हैं, और उन परमशिव की शक्ति शिवादि अवनिपर्यन्त छत्तीस तत्त्वमयी हैं समस्त प्रपंचात्मिका हैं और उससे अतीत हैं, (वे छत्तीस् तत्त्व इस प्रकार हैं शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्यातत्त्व, माया, अविद्या, कला, राग, काल, नियति, जीव, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल, और भूमि) । शिव का जगन्निर्मातृत्व उस शक्ति के विना सम्पन्न नहीं होता । वहाँ प्रकाशस्वभाव वाले परमशिव रवि का किरण समूह विस्फुरणात्मकशक्ति के रूप विस्तृत विमर्श दर्पण में प्रतिफलित होता है जिस प्रकार लोक में सूर्य की ओर किए हुए दर्पण में सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब के पड़ने के अनन्तर समीपस्थ दीवार में सूर्य की किरणों के विपरीत लौटे हुए तेजोबिन्दु प्रत्यक्ष सिद्ध होते हैं, वैसे ही प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के दर्पण जैसे स्वरूप के विमर्शरूप सम्बन्ध के होने पर महाबिन्दु पूर्णोऽहं रूप इसी रूप में परमेश्वर प्रकाशित होता है, श्वेत रक्त दो बिन्दुओं कामेश्वरीरूप दिव्यमिथुन (दम्पति) होता है और वही वाक् और अर्थ की सृष्टि का हेतु होता है । परमेश्वर अपने अङ्गभूत अखिल प्रपञ्च की विलयात्मक विमर्शशक्ति में प्रविष्ट होकर बिन्दु भाव में आता है, इसके अनन्तर विमर्शशक्ति भी अपने अन्तर्गत प्रकाशमय बिन्दु में प्रवेश करती है तदन्तर बिन्दु (उन दो शुक्लरक्तबिन्दु मिश्रण फलजन्य) उत्पन्न होता है। उस बिन्दु से नादात्मिका समस्त छत्तीस तत्त्वों को गर्भ में रखी हुई जीव रूपिणी बाल के अग्रभाग जैसी सूक्ष्मरूपिणी

होती है । बिन्दु और नाद स्वरूप उन दोनों प्रकाश विमर्श शिवशक्ति का अहम् रूप शरीर होता है, उन दोनों में विमर्श रक्तबिन्दु रूप होता है, और प्रकाश शुक्ल बिन्दुरूप होता है । वही श्वेतरक्त बिन्दुओं से समरस हुआ मिश्र बिन्दु कहा जाता है । अग्नि और सोमरूपिणी विमर्शशक्ति कही जाती है । उन दोनों समरसभूतकामेश्वर सहित महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दु की समष्टिरूपा कामकला कही जाती है । निर्विशेष प्रकाशरूपी रवि इस कामकला का ऊद्ध्र्व बिन्दु मुख होता है । चन्द्र और अग्निरूप दो दांए बाएँ दो बिन्दु उस कामकला के दो स्तन हैं उनकी समरसीभावा योनि है, जैसी उक्ति है- सूर्य (रवि) रूप बिन्दु मुखवाली उसके नीचे शोभित होने वाले चन्द्र और अग्नि आत्मक दो बिन्दु रूप दो स्तनों वाली, तथा हसरूप पराशक्ति की आधी कला रचनात्मिका परदेवता की सेवा करो । एकार (त्रिकोण बीज अधोगत योनिरूप बिन्दु) ऊपर बिन्दुरूप मुख रवि, उसके नीचे दो बिन्दु स्तन रूप अग्नि और शशिरूप और योनि हरार्धकलारूपा है ।।२८।।

२९ गद्यखण्ड- मूलम् -: वर्णपदमन्त्ररूपावाक्कला तत्त्वभुवनात्मा अर्थः) तावेतौ वागर्थौनित्यसम्पृक्तौ प्रकाश विमर्शात्मकौ ताभ्यामेव षडध्वात्मक सर्वप्रपञ्चोत्पत्ति श्रवणात्। कामकलारूपायास्त्रिपुरसुन्दर्या एव मातृमानमेयपुटधामपीठ-शक्तिचक्रादिरूपेणाविर्भाव इति कामकलाविलासे विशदम् (अपरिच्छिन्नान्त तेजोराशिमयी अनन्त कोटियोगिनीवृन्द-समाराधिता नित्य निरवधिकातिशयानन्दमयात्मसाम्राज्यसम्पद-भिमानशालिनीमहात्रिपुरसुन्दरी यदा चक्राकारेण परिणमते तदा तस्या स्तेजः पुञ्जात्मक देहस्य किरणरूपाणामवयवानां तत्तदा-वरणदेवतारूपे परिणतिर्भवति । तदेतत्सर्वमुक्तं कामकलाविलासे सेयं परामहेशीचक्राकारेण परिणमेत यदा । तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः । सर्वाः ।। आसीना बिन्दुमये चक्रे सा

त्रिपुरसुन्दरी देवी । कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा।। पाशांकुशेक्षुचाप प्रशूनशरपञ्चकाञ्चितस्वकरा । बालारुणाङ्गी शशि भानुकृशानुलोचनत्रितया ।। (कामकलाविलासे-३६, ३७, ३८ तमाःकारिकाः)।।२९।।

अर्थ -: वर्ण, पद (शब्द), और मन्त्ररूप वाक् और कला , तत्त्व (३६ तत्त्व) और भुवनात्मक अर्थ हैं, वे दोनों वाक् और अर्थ नित्य ही सम्पृक्त (जुड़े हुए) हैं अर्थात् सम्बद्ध हैं या एकीकृत हैं, और उनमें वाक् प्रकाश और विमर्श अर्थ है । उन दोनों से ही षडध्वात्मक समस्त प्रपञ्च की उत्पत्ति सुनी गई है वे षडध्वा ये हैं -: षट्- छह अध्वा-मार्ग- १वर्णाध्वा, २ पदाध्वा, ३ मन्त्राध्वा ये तीन वाक् से सम्बद्ध हैं और ४ कलाध्वा, ५ तत्त्वाध्वा, ६ भुवनाध्वा ये तीन अर्थ से सम्बद्ध हैं । इन छह अध्वाओं में १ वर्णाध्वा- अकारादिक्षकारान्त है, २ पदाध्वा - समस्त वर्णों का समूह- पदाध्वा है । ३ मन्त्राध्वा- समस्त मन्त्र समूह मंत्राध्वा है। ४ कलाध्वा- निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता पाँच कलाएँ कलाध्वा हैं । ५ तत्त्वाध्वा- छत्तीस तत्त्व- शिवादि अवनि पर्यन्त-३६ तत्त्व- शिव, शक्ति, सदाशिव, विद्या, ईश्वर में पाँचतत्त्व शुद्ध हैं माया, काल, नियति, कला, विद्या, राग और पुरुष ये सात तत्त्व शुद्धा शुद्ध तत्त्व हैं । प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, मन ५ज्ञानेन्द्रियाँ, ५कर्मेन्द्रियाँ, ५तन्मात्राएँ, ५महाभूत- ये २४ तत्त्व त्रैपुरसिद्धान्त में अशुद्धतत्त्व हैं, योग से कुल छत्तीस तत्त्व स्वीकृत हैं । कामकला रूपिणी त्रिपुरसुन्दरी भगवती ही- माता (प्रमाता), मान (प्रमाण) मेय (जिसे प्रमाणित किया जाय- प्रमेय), पुट, (त्रिपुटी) इसी आधार पर ज्ञाता ज्ञान, ज्ञेय, ध्याता ध्यान, ध्येय, धाम, (भुवनादि) पीठ (कामरूप, जालन्धर, उड्याण, पूर्णागिर), शक्ति (अभिधा, लक्षणा) ज्ञान क्रिया इच्छा शक्ति, चक्र- श्रीचक्र के नवावरण और मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञा और सहस्रार आदि रूपों आविर्भूत होती हैं । यह कामकला विलास ग्रन्थ में विशद रूप से प्रतिपादित हुआ है । अपरिच्छिन्न याने सीमारहित

अनन्त तेजोराशिमयी, अनन्त कोटियोगिनी वृन्दसमाराधित (महाचतुःषष्टि-कोटियोगिनीगणसेविता), नित्यनिरवधिक अतिशय आनन्दमय आत्मसाम्राज्यरूप सम्पत्ति-अभिमानशालिनी महात्रिपुरसुन्दरी जब चक्राकार में (श्रीचक्र) परिणमित होती है, तब उसके तेजःपुञ्जात्मकदेह के किरणरूप अवयवों की उन उन आवरणदेवता के रूप में परिणति होती है इत्यादि सभी विषय कामकला विलास नामक ग्रन्थ में कहे गए है- **सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यदा । तद्देहावयवानां परिणतिरावरण देवताः सर्वाः ।** (कारिका ३६वीं) अर्थात् - वही यह सर्वोत्कृष्ट महासाम्राज्ञी जब श्रीचक्ररूप में परिणत होती है तब उनके देह के अवयव सभी आवरण देवता के रूप में परिणत होते हैं ।।

आसीना बिन्दुमये चक्रे सात्रिपुरसुन्दरी देवी । कामेश्वराङ्क-निलयाकलया चन्द्रस्यकल्पितोत्तंसा । (कारिका ३७वीं) - वह त्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुमय चक्र में (सर्वानन्दमय चक्र) आसीन है । वे भगवान् कामेश्वर के अङ्क में विराजमान हैं । उन्होंने चन्द्रमा की निष्कलंक कला को आभूषण के रूप में धारण किया है ।।

पाशांकुशेक्षुचापप्रशूनशरपञ्चकाञ्चित स्वकरा । बालारुणा-रुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया ।। (कारिका ३८वीं) - अपनी चारों भुजाओं में पाश, अंकुश, इक्षु धनुष और पाँच पुष्ण बाण धारण की हुई हैं । वे उदीयमान अरुणवर्ण सूर्य के वर्ण के अनुसार अरुणाङ्गी हैं । चन्द्र, सूर्य और अग्नि उनके तीन नेत्र हैं ।। (कारिका ३८वीं) ।।

पिछले गद्य खण्ड में प्रतिपादित विषय का सार अगली कारिकाओं में (वरिवस्यारहस्य के द्वितीयांश में) श्रीभास्कर रॉय ने किया - यथा -

अहकारौ शिवशक्ती शून्याकारौ परस्पराश्लिष्टौ ।। स्फुरण-प्रकाशरूपावुपनिषदुक्तं परं ब्रह्म ।।६९।। (वरिवस्यारहस्येद्वितीयांशे)

"**अकार**" और "**हकार**" - ये दोनों शिव और शक्ति स्वरूप हैं शून्याकार हैं तथा परस्पर आश्लिष्ट हैं एवं स्फुरण और प्रकाशरूप

हैं – अर्थात् हकारात्मिका शक्ति स्फुरणरूपा है अकारात्मक शिव प्रकाशरूप हैं। इन्हीं को उपनिषदों में परब्रह्म कहा गया है ॥ ६९ ॥

विश्वसिसृक्षावशतः स्वार्थोशक्तिं विलोकयद्ब्रह्म ।।
बिन्दुभवति तमिन्दुं प्रविशति शक्तिस्तु रक्तबिन्दुतया ।।७०।।

उपनिषद् प्रोक्त परब्रह्म की विश्व की सृष्टि करने की इच्छा के वश से अपनी अर्धशक्ति को देखते हुए वह बिन्दुरूप बनता है, और उस बिन्दुरूप इन्दु (चन्द्रमा) में वह अर्धशक्तिरूप लाल (रक्त) बिन्दु प्रविष्ट होता है ।। ७०।।

एतत्पिण्डद्वितयं विसर्ग संज्ञं हकारचैतन्यम् ।।
मिश्रस्तु तत्समष्टिः कामाख्यो रविरकारचैतन्यम् ।।७१।।

ये दोनों पिण्ड विसर्गसंज्ञक हैं यह "हकार" का चैतन्य है और दोनों पिण्डों का मिश्रबिन्दु समष्टि है, तथा रविरूप कामतत्त्व है वह "अकार" का चैतन्य है ।।७१।।

एषाहं पदतुर्यस्वरकामकलादिशब्दनिर्देश्या ।।
वागर्थसृष्टिबीजं तेनाहंतामयं विश्वम् ।। ७२ ।।

इस बिन्दुद्वय के मिश्रण से "अहं" पद से प्रतिपादित तुर्यस्वर (ई) रूपिणी "कामकला" कही जाती है यही शब्दार्थसृष्टि का बीज है तथा इसी से विश्व अहंतामय है ।।७२।।

अन्त्यप्रथमे मध्यचतुर्थे मन्त्रेऽपि तौ व्यक्तौ ।।
तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः ।। ७३ ।।

पञ्चदशी मन्त्र के तृतीय कूट (सादि-शक्ति) में प्रथम वर्ण "स" और मध्यकूट (हादिकूट) में चतुर्थ पद "ह" इन दोनों से ("स-ह") से अभिव्यक्त होते हैं। अतः अम्बा (जगदम्बा) का मन्त्र का और जगत् का अभेद ही यहाँ "भावार्थ" है ॥ उक्ति है ॥ वृहन्नारदीय पुराणे-: **अकार ब्रह्मणोरूपं उकारं विष्णुरूपवत् ।। मकारं रुद्ररूपं स्यादर्धमात्रं परात्मकम् ।।**

अपिच-: **अकारः सर्ववर्णाग्र्यः, प्रकाशः परमःशिवः ।।**
हकारो ऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ।।

भावार्थ-: शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार होती है- भावो = जन्म। "भावः सत्तास्वभावाभि- प्रायचेष्टा जन्मसु" इत्यमरः । स एवार्थः प्रयोजनं ज्ञेयत्वाद्यत्र सः । अर्थो ज्ञेयो यत्रेतिवा "अर्थोऽभिधेयैरवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु" इत्यमरः ।। - (भास्कर पृ. २५५)

३० गद्यखण्ड-: **मूलम** -: **सम्प्रदायार्थस्तु** -: यथा -: **व्योमवाय्वग्निजलभूमिबीजैः- ह, क, र, स, ल" वर्णैर्युक्तत्वादियं विद्या पञ्चभूतमयी । तदुक्तम्** - "हकाराद्व्योम सम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः । रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः। लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा ।।

यद्यपि प्रकाश विमर्शसामरस्यात्मकवस्तु विशेषस्यैव शब्दार्थसृष्टिजनकत्वमविशिष्टं, तथापि प्रकाशांशस्यार्थसृष्टौ विमर्शांशस्य शब्द सृष्टौ जनकत्वं, तयोः परस्परसापेक्षत्वेनैव स्वस्वकार्य जनकत्वस्य श्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात्तथा च विमर्श-शक्तेर्हकार उत्पन्नः, ततः, प्रकाशाद् , व्योम ततो विमर्शात्ककारः ततः प्रकाशाद्वायुः, ततो विमर्शाद्रेफस्ततः प्रकाशादग्निः, ततो विमर्शात्सकारः, ततः प्रकाशाज्जलम्, ततो विमर्शाल्लकारः, ततः प्रकाशात्पृथिवी" इत्येवं क्रमेण पञ्चमहाभूतोत्पत्तौसत्यामपि हकारवद्विमर्श विशिष्ट प्रकाशस्यैव व्योम प्रति कारणत्वात् कारणतावच्छेदकस्य हकारे सिद्धे विनिगमनाविरहात्कारणत्वमपि सिद्ध्यति, एवमेव ककारादिष्वपि। न चैवं हकारादेर्वाय्वादिकं प्रत्यपिकरणत्वापत्तिरिति वाच्यम् ? तेषामन्यथासिद्धत्वात् पारम्पर्येण तत्त्वेऽपि दोषा भावाच्च ।।३०।।

अर्थ-: पञ्चदशीमहामन्त्र का सम्प्रदायार्थ विवेचन -: व्योमादिजनकहकरसलार्णैर्घटनेन पञ्चभूतमयी ।। पञ्चचतुस्त्रि-द्व्येकगशब्दादिगुणात्मपञ्चदशवर्णाः।।७४।।(वरिस्यारहस्ये /२/७४)

अर्थात् -: व्योम (आकाश), वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन के

जनक क्रमशः - ह, क, र, स, ल इन पञ्चवर्णों का जो पञ्चदशी महामन्त्र के हैं इन पाँच वर्णों का पञ्चमहाभूतजनक होने से इन पाँच के समुदाय का अर्थ होने पञ्चभूतमयी है - इन पाँच वर्णों के गुण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध हैं इनकी संख्या इस प्रकार है- ह- आकाश शब्द- ५, क - वायु-स्पर्श- ४, र - तेज-रूप-३, स - रस् (जल)- २, - ल- पृथ्वी- गन्ध- १ = योग १५ पन्द्रह संख्या- पञ्चदशी महामन्त्र ।।

मूलशब्दार्थ- यथा-: व्योम (आकाश), वायु, अग्नि, जल, भूमि इनके पाँच बीज- ह, क, र, स, ल इनसे युक्त होने से यह महाविद्या पञ्चभूतमयी है यह कहा है योगिनी हृदय में - यथा-

हकाराद्व्योम सम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः । रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः । लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा ।। २/२९-३०) इति -

यद्यपि प्रकाश विमर्श सामरस्यात्मक वस्तुविशेष ही शब्दार्थसृष्टि का जनक है जो सामान्यतया है तो भी प्रकाशांश का ही अर्थ सृष्टि में विमर्शांश का शब्द सृष्टि में जनकत्व सिद्ध है। उन दोनों के परस्पर सापेक्ष भाव से ही अपने अपने कार्य के विषय में जनकत्व वेद, स्मृति से सिद्ध है । और विमर्श शक्ति से ''हकार'' उत्पन्न हुआ इसके बाद प्रकाश से - व्योम(आकाश) हुआ उसके बाद विमर्श से ककार उत्पन्न हुआ इसके बाद प्रकाश से वायु फिर विमर्श से रेफ हुआ उसके बाद प्रकाश से अग्नि उसके बाद विमर्श से सकार, तब प्रकाश से जल और उसके बाद विमर्श से लकार फिर प्रकाश से पृथिवी, इस प्रकार ही पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होने पर भी हकार की तरह विमर्श विशिष्ट प्रकाश की ही व्योम(आकाश) के प्रति कारणता सिद्ध होगी। इस पद्धति से कारणतावच्छेदकता हकार में सिद्ध होने से विनिगमना (दो में से एक पक्ष में निर्णय न होने से) के अभाव में कारणत्व भी सिद्ध होता है इसी प्रकार ही ककारादि वर्णों में भी यही पद्धति होगी । यदि हकारादि वर्ण वायु आदि भूतों के प्रति भी कारण क्यों न माने जाय ? पर उन अन्य वर्णौं की अन्यथासिद्धि

(अन्यकारणों से सिद्धि) है और शास्त्र मान्य है और पारम्परिक क्रम से भी तत्त्व में भी दोषाभाव है। अर्थात् पञ्चदशी विद्या में पाँच ही वर्ण रहें अधिक वर्णों की आवश्यकता नहीं है ।।३०।।

३१ गद्यखण्ड-: मूलम् - यथा -: ननुतर्हि विद्यायां पञ्चभूतात्मकं वर्णपञ्चकमेवास्तु किमधिकैर्वर्णैरितिचेन्न; व्योमादीनां पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकशब्दादि गुणात्मकत्वेन पञ्चदश-वर्णानामुपपत्तेः। व्योम्नि पञ्चभूतगाः, पञ्चविधाः शब्दाः, वायौ वाय्वादिगताश्चतुर्विधाः स्पर्शाः, तेजसि त्रिविधानिरूपाणि जले द्विविधो रसः, भूमावेकविधो गन्धः । पञ्चदशभिर्गुणैः पञ्चदशानां वर्णानामभेदः । अथवा- विद्यायां मायात्रये हकारत्रयं, मध्यकूटे च द्वौ हकारौ तैः पञ्चभिः पञ्चशब्दाः बोध्यन्तो । तदुक्तम् "व्योमबीजैस्तु विद्यास्थैर्लक्षयेच्छब्दपञ्चकम् " इति । अतएव-भावार्थ प्रकरणे हकारस्य शक्तिवाचकत्वेऽप्यत्र शब्दलक्षण-कत्वानुपपत्यभावः, "गङ्गायां घोषमत्स्यौ" इत्यादौ वृत्तिद्वयस्या-पीष्टत्वात् । अथवा :- तत्र शिवशक्त्यात्मकमूलबीजात्मकयोर-कारहकारयोः सूक्ष्मतमं रूपमिह तु वैखर्यात्मकयोः स्थूलरूपयोर-र्थान्तरपरत्वमुच्यते । तथा च मध्यम हकारे ध्वन्यंशः परब्रह्म वाचकः वर्णांशस्तु शब्दलक्षकः । सर्वेष्वपि वर्णेषु वर्णांशध्वन्यंशौ परस्परसंसृष्टौ कत्वादिवर्ण धर्माणां तारत्वमन्द्रत्वषड्जत्वादिध्व-निधर्माणाञ्च सर्ववर्णेष्वनुभूयमानत्वात् ध्वन्यालम्बनत्वेनैव तत्तद्वर्णानामेकैकरूपत्वेऽपि देवदत्तयज्ञदत्ताद्युच्चारित वर्णानां वैलक्षण्यप्रतीत्युपपत्तिः ।।३१।।

अर्थ -: एक प्रश्न यहाँ उपस्थित हुआ है, कि पञ्चदशी विद्या में पञ्चभूतात्मक पाँच वर्ण ही रहें इन पाँच से अधिक वर्णों की क्या आवश्यकता है, परन्तु ऐसा नहीं; क्योंकि आकाशादि पाँचों भूतों के पाँच, चार, तीन, दो और एक गुणात्मक होने से पन्द्रहवर्ण सिद्ध हैं-

अर्थात् आकाश के पाँच गुण, वायु के चार गुण, तेज के तीन गुण, जल (रस) के दो गुण और भूमि का एक गुण = योग से पन्द्रह गुण वर्णरूप पञ्चदशी विद्या में सिद्ध हैं- अथवा - पञ्चदशी विद्या में तीन माया बीजों में (ह्रीं, ह्रीं, ह्रीं- तीन हकार) तीन हकार, और मध्यकूट हादिकूट में (ह स क ह् ल) दो हकार तीन और दो हकार का योग पाँच हकारों से पाँच शब्दों का बोध होता है- यथा-योगिनी हृदय- २/३६- का वाक्य- "**व्योमबीजैस्तु विद्यास्थैर्लक्ष्येच्छब्द पञ्चकम्**" अर्थात् व्योम बीज हकार से जो पञ्चदशी विद्या के तीन कूटों के अन्त में तथा मध्यकूट में स्थित दो हकारों से पाँच शब्द (हकार) लक्षित होते हैं- अतएव "भावार्थ-प्रकरण" में हकार में शक्ति वाचकत्व होने पर भी यहाँ हकार में शब्दलक्षणकत्व की असिद्धि का अभाव है, अर्थात् हकार में शक्तिवाचकत्व और शब्दलक्षणकत्व धर्म सिद्ध है, "भावार्थ" विवेचन में हकार का शक्तिवाचकत्व विवेचित हुआ है । संक्षेप में यह सार निष्कर्ष था, कि हकार शक्तिवाचक है, रक्तबिन्दुरूप है । हादिकूट का चतुर्थ वर्ण है, तथा वह हकार शब्दलक्षण में ह व्योम का वाचक है "जिसका योगिनीहृदय" की २/३६वीं कारिका में पाँच हकारों के रूप में है, इस प्रकार हकार का शक्तिवाचकत्व और शब्दलक्षणकत्व दोनों ही सिद्ध हैं । यहाँ उदाहरण का स्मरण होता है- कि गङ्गायां घोषमत्स्यौ "अर्थात् जैसे गङ्गा में घोष (आभीर बस्ती) तीर का अध्याहार करने से सिद्ध होता है और गङ्गा में मत्स्य है" अर्थात् गङ्गा की शक्त पद में जलधारा- शक्तार्थ में मत्स्य निस्संदेह रहते हैं अर्थात् तीर (लक्ष्यार्थ) और धारा (शक्तार्थ) दोनों सिद्ध हैं । अथवा-: "तत्तद्वर्णा " वहाँ (इस) मन्त्र में- शिवशक्त्यात्मक मूलबीजात्मक अकार हकार से सूक्ष्मतम रूप को इस भावार्थ चिन्तन में तो इन दोनों वर्णों के वैखरी रूपात्मक स्थूलरूप वाले दोनों में स्थान साम्य हैं कण्ठ स्थान है अर्थान्तर परत्व दोनों में है- अकार शिव रूप और हकार- शक्तिरूप, याने मन्त्र में बीजात्मकरूप में सूक्ष्मतम रूप है, और वैखरी- आत्मकरूप में दोनों स्थूलरूप परक हैं, और जैसे मध्यमकूट

(हादिकूट) के मध्यमहकार में जो ध्वनि आत्मक अंश है वह परब्रह्म का वाचक है, और वर्णांश शब्द लक्षक है । सभी ५१वर्णों में वर्णांश और ध्वन्यांश परस्पर- "अह" जैसे परस्पर संलिष्ट रहते हैं और कत्वादि जो व्यञ्जन वर्ण हैं; उनके धर्म (शक्ति) उनकी ध्वनि- ताररूप में, मन्द्ररूप में और षड्जत्वादि ध्वनि के धर्मों के सभी वर्णों में अनुभूत होते हैं, और उन वर्णों की ध्वनि के आलम्बनमात्र से ही उन उन वर्णों के एक एक रूप में भी देवदत्त यज्ञदत्त आदि संज्ञात्मक शब्दों की उच्चारित ध्वनि की विलक्षण प्रतीति सिद्धरूप में सन्देहरहित भाव में उपलब्ध होती है । अर्थात् यज्ञदत्त देवदत्त आदि संज्ञारूप शब्दों में शब्द वर्ण शक्तार्थ से भिन्न व्यक्ति और ध्वनि रूप से सूक्ष्म व्यक्तित्व (पहचान) दोनों ही सिद्ध हैं और विलक्षण हैं । भेदरूप में व्यक्त होता रहता है ।।३१।।

३२ गद्यखण्ड-: मूलम् -: यथा-: मायास्थैस्त्रिभिस्तृतीयाक्षररूपेण च चतुर्भिरीकारैश्चतुर्विधाः स्पर्शाबोध्याः । अत्र पक्षे न ककारैः स्पर्शाबोध्याः । तदुक्तम् - महामाया, त्रयेणापि कारणेन च बिन्दुना । वाय्वग्नि जल भूमीनां स्पर्शानाञ्च चतुष्टयम् । उत्पन्नं भावयेद्देविस्थूलसूक्ष्मविभेदतः । बिन्दुनेति कामकलाचतुष्कस्यापि विशेषणम् । त्रिविधं रूपं मायान्तर्गतैस्त्रिरेफैर्जन्यते । "रूपाणां त्रितयं तद्वत्त्रिभी रेफैर्विभावितम् " इति । सकारद्वयेन रसद्वयम्, "विद्यास्थैश्चन्द्र बीजैस्तु स्थूलः सूक्ष्मो रसः स्मृत" इति वचनात्।

चन्द्रबीजैः सकारैः स्थूलो व्यापको जलगतः, सूक्ष्मः व्याप्यो भूगतो रसश्च बोध्येते । चन्द्र बीजैरिति बहुवचनमविवक्षितम् विद्यायां सकारद्वयस्यैव सत्त्वात् । हादिविद्यायान्तु सकारत्रयस्य सत्वेन तत्रामृत गतोऽप्येषः रस इति । तेन रस त्रयं बोध्यते । लकारस्तु गन्ध बोधकः "वसुन्धरागतोगन्धस्तल्लिपिर्गन्धवाचिका" इति वचनात् । न च विद्यायां लकारत्रयमित्येकेन गन्धबोधोपपत्तावितरयोर्वैयर्थ्यमिति वाच्यम्, भुवनत्रयेण सह

वाच्यवाचकसम्बन्धाल्लकारस्यो पपत्तेः येयद्यज्जनकास्तेषां तेषां त एवार्थाः ए्वात्मा इत्यस्यापवादोऽपि विद्यास्थैः ककारैस्त्रिभिः अशुद्धमिश्र शुद्धाः प्रथमा मध्यमा उत्तमाः साधकाः प्रोच्यन्ते'' तद्भेदैकदृष्टयः शिवाहंभावनाहीनाकर्मैकरताः प्रथमाः । सुपक्वमलकर्माणः सूक्ष्मपुर्यष्टसम्बन्धशालिनः कर्मज्ञानमार्गयोः साधारणाः द्वितीयाः निरस्तभेदाः सर्वत्र शिवैकदृष्टयः तृतीयाः । ''तदुक्तम्''- अशुद्धमिश्रशुद्धानां प्रमातृणां परं वपुः । क्रोधीशस्त्रि-तये नास्य विद्यास्थे न प्रकाश्यते ।। इति ।।३२।।

अर्थ -: ''ह्रीं'' मन्त्र जो तीनों कूटों के अन्त में है उनके तीन हकार तथा कादि -वाग्भवकूटस्थचतुर्थ ''ई'' इन तीन और एक मिलकर चार प्रकार के वर्ण ''स्पर्श वर्ण के रूप में जानने चाहिये यहाँ मन्त्र में ककार'' वर्णो को (मन्त्र में तीनों कूटों में तीन ककार कादयो मावसानाः स्पर्शाः- तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् ल. सि. कौ. संज्ञा. प्रकरण) स्पर्श के रूप में नहीं जानना चाहिये इस विषय में योगिनीहृदय २/३८,३९ में कहा गया है- ''महामायात्रयेणापिकारणेन च बिन्दुना । वाय्यवाग्निजलभूमीनां स्पर्शानाञ्च चतुष्टयम् । उत्पन्नं भावयेद्देवि स्थूलसूक्ष्म विभेदतः'' अर्थात् महामाया मन्त्र (ह्रीं) में तीन ईकार और कारण रूप चतुर्थ स्वर (कादिकूटस्थ) ''ई'' कार से विश्व का कारण कहा है और जो बिन्दु है वह कामकलाओं का विशेषण है; क्योंकि महामायास्थ ईकार तीन बिन्दु युक्त हैं अथवा चतुर्थ जो ईकार है उस तुरीय बिन्दु से जन्य है यह उक्ति वायुमण्डल बिन्दु से चिह्नित यह सूचित करने के लिये है । हे देवि ! वायु, अग्नि, जल और भूमि इन चारों स्पर्शों की स्थूल सूक्ष्म भेदों से भावना करनी चाहिये- याने स्थूल व्यापक स्पर्श वायुगत है (रूपरहितस्पर्शवान् वायुः त.म.) और बाकी तीन अग्नि, जल और भूमि सूक्ष्म व्याप्य इन तीनों में है, यहाँ ''बिन्दुना'' पद से यह सूचित है कि कामकलाचतुष्ट्य (चार ईकार) का विशेषण है । (बिन्दुनातन्निभालनम्)

परन्तु तीन रूप माया (ह्रीं) के अन्तर्गत तीन रेफों से उत्पन्न होते हैं, अर्थात् - ह्रीं = ह र् ई म् में रेफ से तीन रूप उत्पन्न होते हैं "रूपाणां त्रितयं तद्वत् त्रिभी रेफैर्विभावितम् (यो. हृ. २/४०)" यह उक्ति है। इसी प्रकार सकारद्वय से (हादिकूटका - ह, स, क, ह ल, -ह्रीम्) द्वितीय सकार और सादिकूट का प्रथम सकार (सादिकूट सकल ह्रीम्) इन दोनों सकारों से रसद्वय याने जल तत्त्व प्राप्य होता है जैसे यह उक्ति है- विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु स्थूलः सूक्ष्मोरसः स्मृतः "(यो. हृ. २/४१) यह उक्ति है चन्द्रबीज सकारों से स्थूल व्यापक रस गत है और सूक्ष्म, व्याप्य रस भूगत है इस प्रकार ज्ञात होते हैं । यहाँ चन्द्रबीजैः" में बहुवचन कहा है ; जबकि चन्द्रबीज सकार दो हैं, किन्तु हादिविद्या में अर्थात् लोपामुद्रा हादिविद्या है यथा-: ह स क ल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीम् - इस विद्या में तीन सकार हैं । अतः इस हादि विद्या के सकारत्रय इनमें श्री अमृतगत सह रस है, इससे रसत्रय ज्ञात होते हैं और विद्यागत लकार तो गन्ध गुण का या तत्त्व का बोधक है "वसुन्धरागतो गन्धस्तल्लिपिर्गन्धिर्वाचिका" यह वचन है ।(यो. हृ. २/४२)-।। यहाँ एक प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि पञ्चदशी महाविद्या में जो लकारत्रय है उसमें से एक लकार से गन्ध का बोध हो जायेगा बाकी दो लकार तो व्यर्थ होंगे ? परन्तु तीन भुवनों के सम्बन्ध के साथ वाच्य, वाचक भाव सम्बन्ध से तीन लकारों की उपयुक्तता हो जाती है । "यह जो वचन है"- ये ये यद्यज्जनकास्तेषां तेषां तएवार्थाः "इत्यस्य अपवादोऽपि अर्थात्- जो जो जिसके जिसके जनक हैं, वे वे उन उनके ही अर्थ हैं" यह नियम बाधित हो जाता है ।। महाविद्या में स्थित ककारत्रय से अशुद्ध , मिश्र और शुद्ध भेद होते हैं और उनमें त्रिविध साधक भी शिवोऽहं भावना हीन, एकमात्र कर्म रत होते है अर्थात् उपासक भी- यथा- अधमसाधक, भेद बुद्धि वाले कर्म भावशून्य वासनाग्रस्त, मध्यम साधक कर्म और ज्ञान दोनों मार्गों में समान तथा पुर्यष्टक से सम्बन्धित, (चितिश्चैत्यं य चैतन्यं चेतनं द्वयकर्मच। जीवः कला शरीरं च सूक्ष्म पुर्यष्टकं भवेत् ।।) उत्तमसाधक सर्वत्र शिवैक

दृष्टिवाले होते हैं अधम साधक- अशुद्ध, मध्यम साधक मिश्र और उत्तम साधक शुद्ध भेद युक्त होते हैं वचन भी है- अशुद्धमिश्रशुद्धानां प्रमातृणां परंवपुः । क्रोधीशस्त्रितयेनाऽस्य विद्यास्थेन प्रकाश्यते ।। (यो.हृ. २/४३) क्रोधीश ककार का नाम है, तीन क्रोधीशों से अर्थात् ककारों से जो महाविद्यापंचदशीमंत्र में स्थित हैं, उनसे तीनों से प्रमातृगणों साधकों के त्रिविधशरीर निर्मित होते हैं । मन्त्रोपासना के परिणामस्वरूप अशुद्ध, मिश्र और शुद्ध ।।३२।।

३३ गद्यखण्ड-: मूलम् -: द्वितीयतृतीयवर्णौ हृल्लेखात्रयञ्च मुक्त्वाऽवशिष्टेषु दशाक्षरेषु अकारादश भवन्ति । ते च जीवराशिबोधकाः । एकेनापि बोधसम्भवेऽपि दशभिरभिधानं जीवानामानन्त्यबोधनाय । विद्यायाः प्राणभूत एकादशस्वरः - एकारः प्राणवाचकः- तदुक्तम् ''श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हिवाचकम् । प्राणभूतः स्थितो देवि तद्वदेकः वशः स्वरः । एकः सन्नेव पुरुषो बहुधा जायते हि सः ''इति ।। इह श्रीकण्ठाअकाराः। अव्यक्तोजीवः । बिन्दुभि त्रिभिः सरुद्रेश्वर सदाशिवा बोध्यन्ते । रुद्रपदेनात्र तेजस्तत्त्वं बोध्यते । ततः पुरुषनियतिकालरागविद्या-कलामायानां परिग्रहः । ''पुरुषादिकमायान्तं तेजस्तत्त्वं महेश्वरि ''इति स्वच्छन्दसंग्रहोक्तेः'' शान्तिः, प्रकृतिः शुद्ध विद्या च नादत्रितयेन बोध्यन्ते अर्धचन्द्रद्युन्मनान्तं वर्णाष्टकं नादपदेनो-च्यन्ते । तत्राद्यत्रितयेन शान्तिः प्रकृतिः शुद्ध विद्या बोध्यन्ते । एवं व्योम बीजपञ्चकेनचतसृभिः कामकलाभिः द्वाभ्यां चन्द्र बीजाभ्यां त्रिभी रेफैस्त्रिभिर्लकारैः त्रिभिः ककारैः, त्रिभिबिन्दुभिः, त्रिभिर्नादैः, श्रीकण्ठदशकेनैकेन एकादश स्वरेण इति संहत्य सप्तत्रिंशत् पदानि तेषां षट्त्रिंशत्तत्वानितत्त्वातीतमेकं परं ब्रह्म चार्थः । तानि च तत्त्वानि-शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, रागः, कालः, नियतिः, पुरुषः, प्रकृतिः,

अहंकारः, बुद्धि, मनः, श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राणम, वाक्, पाणिः, पायु, उपस्थः, शब्दः, स्पर्शः, रूप, रसः, गन्धः, आकाशः, वायुः तेजः आपः पृथ्वीत्येतानि । तत्र शिवशक्ति शुद्धविद्या प्रकृतयः बिन्द्वर्थाः सदाशिवादि पुरुषान्ताः नवनादार्थाः। शब्दादय आकाशादयश्च श्रोत्रादयो वागादयश्च पञ्च पञ्च हकारादेरर्थाः । अहंकारादित्रितयं, तु ककारत्रयस्यार्थः । एकादश-स्वरस्य तत्त्वातीतं ब्रह्मार्थः । यद्यपि हकारादेः शब्दाद्यर्थकत्ववत्-इन्द्रियाद्यर्थकत्वं नोक्तम् - तथापि स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी। सप्तत्रिंशत्प्रभेदेनषट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी । तत्त्वातीतस्वभावाऽत्र विद्यैषा भाव्यते मया'' इति वचनबलात्तथा कल्पनीयम् ।।३३।।

अर्थ -: पञ्चदशी महामन्त्र में द्वितीय और तृतीय वर्ण अर्थात् प्रथम कादिकूट का द्वितीयवर्ण ''ए'' और तृतीय वर्ण ''ई '' हल्लेखा तीन- ह्रीं- ह्रीं ह्रीं इन्हें छोड़कर बाकी बचे दश अक्षरों में अर्थात् - क ल ह स क अ अ अ अ अ ह ल, स क ल दस अकार होते हैं । वे अकार जीव समूह के बोधक हैं । अ अ अ अ अ एक प्रकार के बोध सम्भव होने पर भी दश नाम जीवों के अनन्त होने के बोध के लिये हैं । पञ्चदशी महाविद्या का द्वितीय वर्ण ''ए'' प्राणभूत ग्यारहवाँ स्वर है; जो प्राणवाचक है । कहा गया है ''श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम् । प्राणभूतः स्थितो देवि तद्वदेकादशः स्वरः'' इति यहाँ श्रीकण्ठ याने अकार ये दश है मन्त्र में और अव्यक्त अर्थात् जीव और तीन बिन्दु ये तीन बिन्दु रुद्र ईश्वर और सदाशिव (भगवती के सिंहासन के तृतीय और चतुर्थ पाये तथा ऊपर का फलक सदाशिव) जाने जाते हैं यहाँ जो रुद्र पद है वह तेजस्तत्त्वका (छत्तीस तत्त्वों में ३४वाँ) बोधक है। इससे पुरुष नियति काल राग विद्या कला और माया तत्त्वों का समूह संगृहीत होता है । ''पुरुषादिकमायान्तं तेजस्तत्त्वं महेश्वरि'' ऐसी ''स्वच्छन्दसंग्रह'' की उक्ति है । शान्ति प्रकृति शुद्धविद्या इन तीनों से तीन नादो का बोध होता है ।

अर्धचन्द्ररोधिनी नादनादान्तशक्तिव्यापिकासमना और उन्मनी ये आठ वर्ण नाद पद से कहे जाते हैं । इन आठ वर्णों में आदि अर्धचन्द्ररोधिनी और नाद वर्णों से शान्ति प्रकृति और शुद्धविद्या का बोध होता है, इसी प्रकार व्योम बीज पञ्चक से अर्थात् आकाश बीज ह से पाँच - आकाश, वायु, तेज, आप, और पृथ्वी, चार कामकलाओं से दो चन्द्रबीजों से तीन रेफों से तीन लकारों से तीन ककारों से तीन बिन्दुओं से, तीन नादों से, श्रीकण्ठ (अकार) दश से और एक ग्यारहवें स्वर से अर्थात् (ए) से योग करने पर ३७ पद होते हैं उनमें शिवादि पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्त्व और तत्त्वातीत एक परंब्रह्म यह अर्थ है। (समुदायार्थ) और वे छत्तीस तत्त्व इस प्रकार हैं- यथा- शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कलाविद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, आप और पृथ्वी ये छत्तीस तत्त्व (त्रैपुरदर्शन सिद्धान्त में) हैं । इन छत्तीस तत्त्वों में - शिव शक्ति शुद्धविद्या और प्रकृति तत्त्व बिन्दु के अर्थ हैं । सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति और पुरुष तक ये तत्त्व नव नादों के अर्थ हैं, शब्द से लेकर स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांच, आकाश, वायु, तेज, आप और पृथ्वी पाँच, श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा और घ्राण पाँच तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु उपस्थ ये पाँच हकारादि समष्टि के अर्थ हैं अहंकार बुद्धि और मन ये तो तीन ककारों के अर्थ हैं, तथा ग्यारहवाँ 'ए' स्वर तत्त्वातीत ब्रह्म का अर्थ है । यद्यपि हकारादि की शब्दादि अर्थ में कल्पना की तरह इन्द्रियादि पंचकों में भी अर्थ हो सकता है तो भी यह नहीं कहा गया है फिर भी यह विद्या स्वरव्यञ्जन भेदसे ३७ प्रभेदों वाली है यथा - सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी। तत्त्वातीतस्वभावाऽत्र विद्यैषा भाव्यते मया । इस योगिनी हृदय २/३३-३४ वचन के बल से उस प्रकार की कल्पना की जानी चाहिये ।।३३।।

३४ गद्यखण्ड-: मूलम् -: यथा-: यत्तु सप्तत्रिंशद्वर्णानां

सप्तत्रिंशति तत्त्वेषु क्रमेण शक्तिरस्तु इति - आहुस्तन्न, हकारादौ क्लृप्तशक्तित्यागस्य शक्त्यन्तरस्वीकारस्य चापत्तेः । एकस्याऽनेकार्थत्वं तु न दोषः, एकत्र शक्तिरन्यत्र लक्षणेति सुवचत्वात्। न च युगपद्वृत्तिद्वयविरोधः, एतद्वचनबलादेव सप्तत्रिंशत्तत्त्वस्य शक्ततावच्छेदकत्वाङ्गीकारेण पूर्ववत्तस्यादोषत्वात् । प्रमाण प्रमितत्वाविशेषादनेकार्थत्वस्यापि हर्यादिपदवदविरोधाच्च । क्लृप्त शक्तिपरित्यागस्तु सर्वथाऽप्रामाणिकः । यद्यपि पूर्व विद्यायामष्टपञ्चाशद्वर्णा उक्ताः, कथमिह सप्तत्रिंशत्त्वेन गण्यन्त इति भवत्या शंका, तथाप्यस्याः संख्यायाः पदगतत्वेनोपपत्तिर्वाच्या ।।३४।।

अर्थ -: यदि सैंतीस वर्णों की सैंतीस तत्त्वों में क्रमशः शक्ति हो ऐसा माना जाय तो हकारादि में जो शक्ति स्वीकृत है उसे त्यागकर अन्य शक्ति को मानना पड़ेगा यदि यह कहें, कि एक ही वर्ण में अनेकार्थत्व मानने का दोष है तो यह भी नहीं है; क्योंकि एक स्थान में शक्ति होगी तो अन्यत्र लक्षणा सुगमता से हो जायगी । फिर भी एक साथ दो वृत्तियों (शक्ति और लक्षणा) का विरोध तो होगा ही ? नहीं - पूर्वोक्त वचन के बल से ही सैंतीस तत्त्वों की शक्ततावच्छेदता का अङ्गीकार होने से पूर्ववत् उसका अदोष सिद्ध हो जायगा । प्रमाणों से प्रमित (निश्चित) होने से सामान्यतया (अविशेषात्) अनेकार्थता भी हरि आदि पदों की तरह अविरुद्ध होगी । किन्तु निश्चित शक्ति का परित्याग तो सर्वथा अप्रामाणिक है । किन्तु पूर्व में जो ५८ वर्ण कहे गये हैं तो यहाँ पर कैसे सैंतीस वर्ण गिने जा रहे हैं, यह आशंका होती है तो भी यह संख्या इस रूप में नहीं कही गई है, जिससे शङ्का हो सके, अर्थात् दोनों ही अविरुद्ध हैं ।

३५ गद्यखण्ड- मूलम् -: ननु विभक्त्यन्तस्यैव पदत्वात्कथमिह पदभाक्त्वमिति चेन्न, अर्थवत्त्वेन प्रत्यक्षरं प्रातिपदिकसंज्ञायां सुबुत्पतौ ''सुपांसुलुगिति लोपस्वीकारेण विभक्त्यन्तरूपपदसत्त्वात् । न चैव ककारेषु जशत्वापत्तिरिति वाच्यम्,

कितिपिति इत्यादिज्ञापकैरेकाक्षरपदे तदनित्यताया ज्ञापनात् । एवञ्च सर्वतत्त्वतत्त्वातीतवस्तुप्रतिपादकत्वात् सर्वस्वरूपेयं विद्या। यतो जन्यजनकयोर्भेदाभावाद्वाच्यस्य वाचकेनापि भेदाभाव इति ब्रह्मणि जगतोऽभेदः । जगति च विद्याभेद इति सम्प्रदायार्थः ।।३५।।

अर्थ -: यदि "सुप्तिङन्तं पदम् से और विभक्त्यन्ताः पदम्" इन सूत्रों से (पाणि निअष्टाध्यायी और न्यायसूत्र) शक्तं पदम् इस परिभाषा से पद भाक्त्व कैसे होगा, परन्तु ऐसा नहीं पद के अर्थवत् होने से प्रत्येक अक्षरों में प्रातिपदिक संज्ञा में सुप् की उत्पत्ति होगी। ऐसा होने पर "सुपां सुलुक्० (सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः" (७/१/३९) वैदिकी प्रकरणे) इस सूत्र से सु का लोप भी स्वीकृत होगा । विभक्त्यन्तपदरूप तो है ही । तो फिर इस प्रकार ककारादि पदों में जश्त्वादेशरूपआपत्ति तो होगी, पर ऐसा नहीं होगा; क्योंकि "किति पिति" इत्यादि ज्ञापक विधानों से एकाक्षर पद में उसकी अनित्यता का ज्ञापन हुआ है। इस प्रकार सर्वतत्त्व (सैंतीस आदि संख्यागणित तत्त्व) और तत्त्वातीत (परब्रह्म) वस्तु की प्रतिपादक होने के कारण यह पञ्चदशी महाविद्या सर्वस्वरूपा है । क्योंकि जन्य और जनक में परस्पर भेदाभाव है, इसी तरह वाच्य और वाचक अर्थात् वाच्यका वाचक से भी भेदाभाव है। इसी लिये ब्रह्म में जगत् का अभेद है । और जगत् में विद्या (पञ्चदशी विद्या) का अभेद है । यही इस पञ्चदशी महाविद्या का - सम्प्रदायार्थ है यह विद्या का जगत् में और ब्रह्म में जगत् का अभेद सप्रमाण सयुक्तियुक्त प्रतिपादन गुरुशिष्य की परम्परा क्रम से समागत मर्यादा के अनुसार है अतः यह "सम्प्रदायार्थ " संज्ञा सर्वथा सार्थक है ।।३५।।

३६ गद्यखण्ड-: मूलम् - यथा-: परमशिवस्य निष्कलता तदितरपदार्थाभावः तदितर सर्वस्यापि दुःखजनकत्वात् । "द्वितीयाद्वै भयं भवतीति" श्रुतेरिति "प्रथमकूटार्थः" । तेन सह गुरोरभेदभावनादार्ढ्येन तदभेदः सिद्ध्यतीति "द्वितीयकूटार्थः"।

तत्करुणातः स्वकृताव्यभिचरितभक्तिपूर्वक दृढ़तरसेवासम्पादित प्रसाद जन्यगुरु करुणाकरम्बितकटाक्षनिरीक्षण बलात् स्वस्मिन्नपि साधके ब्रह्माभेदः सिद्ध्यतीति "तृतीयकूटार्थः"। स्वस्य गुरुद्वारा शिवगर्भे प्रवेश सम्पादकत्वादेतज्ज्ञानस्य विषयः शिवगुर्वात्मैक्यं "निगर्भार्थ पदवाच्यम्" ।।३६।।

अर्थ -: परमशिव (कामकला स्वरूप निर्णयावसर में कथित ब्रह्म) में निष्कलता अर्थात् तद्भिन्न सभी पदार्थों का अभाव है क्योंकि तद्भिन्न ब्रह्म से भिन्न सभी पदार्थ दुःखजनक ही है। द्वितीयाद्वै भयं भवति यह श्रुति कहती है (भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्० भागवते) यह प्रथमकूट (पञ्चदशीमहाविद्या का वाग्भवकूट- क ए ई ल ह्रीम्) का अर्थ हुआ। उस ब्रह्म से अपने गुरु का अभेद उनकी ब्रह्माभेद भावना की दृढ़ता से ब्रह्माभेद सिद्ध हो जाता है यही द्वितीयकूट पञ्चदशी महाविद्या का अर्थ है याने (पञ्चदशी महामंत्र का कामराज कूट ह स क ह ल ह्रीम्)। उन गुरु (सद्गुरु) की करुणा शिष्य के द्वारा की गई अव्यभिचरित (सर्वथा एकनिष्ठ) भक्तिपूर्वक अत्यन्त सुदृढ़ सेवा से सम्पन्न प्रसादजन्य श्री गुरु की करुणाकरम्बित अर्थात् मिश्रित कटाक्ष के निरीक्षण बल से (इयमेव दृग्दीक्षा) अपने शिष्य में साधक में भी ब्रह्म का अभेद सिद्ध हो जाता है। यह पञ्चदशी महामन्त्र के तृतीय कूट शक्तिकूट सकलह्रीम् - "का अर्थ है" शिष्य का गुरु के द्वारा शिव के गर्भ में प्रवेश करने इस ज्ञान का शिव, गुरु और शिष्य (आत्मा) का ऐक्य (ज्ञान) ही विषय है अतः यह "निगर्भार्थ" कहा गया है ।। यह आभ्यन्तरिक निगर्भरूप अर्थ है ।।

३७ गद्यखण्ड-: मूलम् -:

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम् ।।

भगवत्या गणेशादिषट्कात्मत्वमुक्तम् । तत्र निरुपमतेजोमय्याः स्वस्याः मरीचिरूपाणामावरणदेवतानामीशत्वात् -

श्रीराजराजेश्वरी त्रिपुराम्बैव गणेशीत्युच्यते । ताश्च देवता एकादशोत्तर शतसंख्याकाः, तन्त्र भेदेनान्या अपि प्रतिपादिताः। इच्छाज्ञानक्रियेति शक्तित्रय समष्टि रूपत्वात्- गुणत्रयाढ्यत्वात्- अनले अनिलेन्दुरविनेत्रत्वान्नवभिर्योगात् पराम्बैव ग्रहरूपोच्यते। इन्द्रियदशकेनान्तः करणचतुष्केन शब्दस्पर्शादिवचनादानादि विषयदशकेन गुणत्रयसाम्यावस्थारूपया प्रकृत्या सुखदुःख- मोहमूलैः सत्त्वरजस्तमोभिर्गुणैः पुरुषेण च सप्त विंशति संख्या- कत्वान्नक्षत्ररूपत्वमप्यस्याः । इन्द्रियादिनिरुक्त सप्तविंशति तत्त्वरूपेण पराम्बाया एव प्राकट्यम् - इति सप्तविंशतिसंख्या तौल्येन नक्षत्ररूपत्वम् । अमृतादितत्तद्देवतोपलक्षकैः षोडशस्वरैः कालरात्र्याद्युपलक्षकैः कादिठान्तैर्द्वादशवर्णैः डामर्य्याद्युपलक्षकैः डादिफान्तैर्दशवर्णैः, बन्धिन्याद्युपलक्षकैः बादिलान्तैः षड्भिः, वरदाद्युपलक्षकैः वादिशान्तैश्चतुर्भिः हंसवतीक्षमावत्योरुपलक्ष- काभ्यां द्वाभ्यां हक्षाभ्यां वर्णाभ्यां वेष्टिताभिरमृताद्यावृताभिर्डाकि- नीराकिनी लाकिनी काकिनी हाकिनीभिः त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थि- मज्जाधिपतिभिर्विशुद्ध्यनाहत मणिपूर स्वाधिष्ठानमूलाधाराज्ञा- चक्राणां तत्तद्देवतावर्णशक्तिसमान संख्यातत्तदीयदलनिविष्टता- वत्तावत्संख्याकदेवी संवृतानां कर्णिकासुनिविष्टाभिर्घटितविग्रहा- त्रिपुराम्बा योगिनीत्युच्यते ।।३७।।

अर्थ -: भगवती के गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि मन्त्रमयी ये छह रूप आत्मकत्व रूप हैं अतः मैं पीठरूपिणी मातृकास्वरूपा को प्रणाम करता हूँ । (यह तन्त्रराज ग्रन्थ में कहा गया है और नित्याषोडशिकार्णव ग्रन्थ में वर्णित है), वहाँ इस तेजोमयी अर्थात् किरणमयी इसकी समस्त आवरणरूपा शक्तियाँ किरणरूपा हैं उन किरण रूप आवरण देवताओं की ईश "अथवा ईश्वरी " होने के कारण वे राजराजेश्वरी त्रिपुराम्बा ही "गणेशी" कही जाती हैं वे जो किरणरूपा

आवरण देवता हैं उनकी संख्या एक सौ ग्यारह- १११ है। तन्त्र भेद से अन्य और भी भेद होते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन तीन शक्तियों को समष्टि रूप कहा गया है तीन गुणों (सत्, रजः, तम) से समृद्ध होने से और अग्नि, चन्द्र, सूर्य जिनके नेत्र हैं इन के नवयोग होने से तथा इनके अवयव होने से पराम्बा ही ग्रह (नवग्रह) रूपिणी कही जाती है। दश इन्द्रियाँ (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ) अन्तःकरण चतुष्टय (मन बुद्धि चित्त अहंकार) दस विषय (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनंद, तीन गुणों (सत् रज तम)की साम्यावस्थारूपा प्रकृति से, सुख-सत् दुःख रज और मोह तम मूलक तीन गुणों से और पुरुष से (गणना द्वारा) सत्ताइस संख्या - (अर्थात् १० इन्द्रियाँ , ४ अन्तःकरण, १० इन्द्रियों के विषय, प्रकृति, पुरुष और सत्ताइसवाँ गुणतत्त्व सुख-दुःख मोहरूप (सत्व, रजः और तम) इस सत्ताईस संख्या से तुल्यता होने से भगवती नक्षत्र (अश्विनी आदि रेवत्यंत) रूपिणी भी हैं। अमृतादि आदि देवताओं के उपलक्षक १६ स्वर अ से लेकर अः तक कालरात्रि आदि के उपलक्षक क से लेकर ठ वर्णपर्यन्तद्वादश, (१२) डामरी आदि के उपलक्षक "ड से लेकर फ" पर्यन्त १० वर्णों से बन्धिनी आदि के उपलक्षक "ब से लेकर ल" तक ६ वर्णों से, वरदादि के उपलक्षक "व से लेकर श" पर्यन्त ४ वर्णों, हंसवती और क्षमावती के उपलक्षक " ह और क्ष" २ वर्णों से वेष्टित अमृतादि से आवृत और ड र ल क स ह- डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी और हाकिनी योगिनियों से भगवती का रूप बताया गया है ये सभी क्रमशः - इस से घटित हैं- यथा- त्वक्, रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा इन धातुओं के अधिपतियों से विशुद्धि अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, मूलाधार और आज्ञाचक्रों के उन उन देवताओं की वर्णशक्ति के समान संख्या से उन उन के दलों (पत्रों) में निविष्ट उतनी उतनी संख्या की देवियों से संवृत कर्णिकाओं में निविष्ट योगिनियों से घटित

श्री विग्रह वाली भगवती हैं (छह डाकिन्यादि योगिनियों-का परिगणन इस प्रकार हैं -:)-

(विशुद्धिचक्र- कण्ठ-स्थान में - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये १६ स्वर दल रूप हैं इनकी अमृता आदि १६ देवियाँ यथा-१ अं- अमृता२ आं- आकर्षिणी, ३इ-इन्द्राणी, ४ ई- ईशानी ५ उ-उमा, ६ऊ -ऊर्ध्वकेशी, ७- ऋ-ऋद्धिदा, ८- ॠ-ॠंकारिका, ९- ऌ-ऌ-कारा, १०- ॡ-ॡंकारा, ११-ए-एकपदा, १२-ऐ-ऐश्वर्यात्मिका, १३-ओ ओङ्कारा, १४-औ-औषधि, १५-अं- अम्बिका, १६-अः-अक्षरा, इन १६ स्वरों (अ से अः तक) तथा १६ अमृतादि (अमृता से अक्षरा तक) शक्तियाँ । (श्रीचक्र की वाग्देवता वशिन्यादि (१ वशिनी, २ कामेश्वरी, ३ मोदिनी, ४ विमला, ५ अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेश्वरी, ८ कौलिनी- इनमें भी वशिनी के १६ स्वर आदि अः पर्यन्त, २ कामेश्वरी के कादि ङान्त ५ वर्ण, क वर्ग, ३ मोदिनी के चादि ञान्त ५ वर्ण च वर्ग, ४ विमला के टादि णान्त ५वर्ण ट वर्ग, ५ अरुणा- तादि नान्त ५ वर्ण त वर्ग, ६ जयिनी- पादि मान्त ५ वर्ण प वर्ग, ७ सर्वेश्वरी यादि वान्त ४ वर्ण य वर्ग, ८ कौलिनी-शादि क्षान्त- ६ वर्ण शादि वर्ग ।

हृत्पद्म में (अनाहत चक्र १२ दल- क से लेकर ह पर्यन्त वर्ण इन वर्णरूपदलों में- राकिणी योगिनी की कालरात्र्यादि १२ दलों (वर्णों) की शक्तियाँ हैं यथा- १ क कालरात्रि, २ ख- खण्डिता, ३ ग- गायत्री, ४ घ- घंटाकर्णिका, ५ ङ ङवर्णा, ६ च चण्डा, ७ छ-छाया, ८ ज-जया, ९ झ- झंकारिणी, १० ञ- ज्ञानरूपा, ११ ट टङ्कहस्ता, १२ ठ-ठङ्कारिणी।

नाभिपद्म (मणिपूर चक्र) १० दल हैं (वर्ण) इन दस वर्णों की शक्तियाँ- १ ड- डामरी, २ ढ- ढंकारिणी, ३ ण णवर्णा, ४ त-तामसी, ५ थ- स्थाणुरूपा, ६ द- दाक्षायणी, ७ ध-धात्री, ८ न- नारी, ९ प पार्वती, १० फ- फट्कारिणी ।

स्वाधिष्ठान चक्र - ६ दल हैं "ब से लेकर ल" वर्ण तक इन वर्णों की शक्तियाँ- १ ब- बन्धिनी, २ भ- भद्रकाली, ३ म- महामाया, ४ य-

यशस्विनी, ५ र- रक्ता, ६ ल - लम्बोदरी।

मूलाधार चक्र - ४ दल हैं "व से लेकर स" पर्यन्त इन वर्णों की शक्तियाँ- १ व- वरदा, २ श - श्री, ३ ष- षण्डा, ४ स- सरस्वती ।

भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) - २ दल हैं- "ह" और "क्ष" इन दो वर्णों की शक्तियाँ- १ ह-हंसवती, २ क्ष- क्षमावती ।। ३७ ।। ("क" वर्ण इनमें परिगणित नहीं होता) ("योगिनीहृदय" में छह योगिनी ही परिगणित हैं, ७वीं योगिनी ब्रह्मरन्ध्रगत याकिनी को नहीं गिना है)

३८ गद्यखण्ड-: मूलम्-: पञ्चभिर्नागकूर्मकृकलदेवदत्त-धनञ्जयैः पञ्चभिः, प्राणापान व्यानोदानसमानैर्जीवात्मपरमात्मभ्याञ्च द्वादशात्मकत्वात्द्वादशराशिरूपिणी पराम्बापीठानां गणेशादिसमानसंख्याकत्वात्तदात्मकत्वोक्त्यैव तदात्मकत्वोक्तिः। यथा भगवती श्रीगणेशादिरूपिणी तथैव श्रीविद्यापि गणेशादि रूपिणी । अकारादिषोडशस्वरात्मकं शक्तिकूटम्, कादितान्ताक्षरात्मकं कामराजकूटम् , थकारादिसान्ताक्षरात्मकं वाग्भवकूटम् । व्यष्टिसमष्टिभेदेन परादिवाक् चतुष्टयञ्चैतत् । तथा च शब्दरूपस्य गणस्येशत्वाद्गणेशरूपिणी श्रीविद्या ।

बिन्दुनाद विनिर्मुक्तमेकं कूटम्, बिन्दुरूपञ्चैकम्, नादरूपञ्चैकम् । तथैव प्रतिकूटं त्रयं त्रयं बिन्दुत्रयनादत्रयतदन्यत्रयैः कूटत्रये नवत्वयोगाद्ग्रहत्वं विद्यायाः ।।

सम्प्रदायार्थ प्रकरणे पञ्चदश्यां सप्तत्रिंशद्वर्णा उक्ताः । तेषु दशाकाराणां स्वरव्यञ्जनै- रपार्थक्येन गणनात् दशसंख्याया बाधे सप्तविंशतिरवशिष्यन्ते । तेन नक्षत्रात्मकत्वं सिद्धं विद्यायाः तदुक्तम् - हृल्लेखात्रयसंभूतैस्तिथिसंख्यैस्तथाऽक्षरैः ।। (वरिवस्यारहस्ये पृ. २९१) (यो.हृ.२/९५)

अन्यैर्द्वादशभिर्वर्णैरेषा नक्षत्ररूपिणी ।। इति-

हकाररेफ कामकला बिन्दुनादैर्हल्लेखायां एकैकस्यां पञ्चाक्षराणितिसृषु पञ्चदशाक्षराणि- क ए ई ल ह स क ह ल सकल इति सम्मेलनेनसप्तविंशत्यक्षराणि सम्पद्यन्ते । तिसृभि- र्हल्लेखा- भिः तद्रहितैः त्रिभिः कूटैश्चेति षड्भिर्योगात् - श्रीविद्या योगिनी सम्पद्यते । तिसृणां हृल्लेखानां त्रयाणां कूटानां च योगाच्छ्रीविद्या योगिनीतिहृदयम् । तिसृणां हृल्लेखानां पूर्ववर्णै- र्लकारैरपार्थक्येन गणनात द्वादशसंख्याकावयवशालित्वाद्राशि- रूपाप्येषा । पञ्चदश्यां ल त्रयनिष्कासनेन गणनात् द्वादशसंख्या एवं गणेशादिषट्कत्वस्य विद्यायां देव्यभेदसाधकत्वे स्थितेऽपि विद्यायां देवीरूपान्तरत्वस्य वचन बलात् सिद्धत्वेन तद्भेदाद् गणेशादिरूपता ।।३८।।

अर्थ -: नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय पञ्चउपप्राण और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पञ्चप्राण, जीवात्मा और परमात्मा- गणना से बारह संख्यात्मक होने से भगवती पराम्बा द्वादशराशि- (मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन रूपिणी हैं । पीठ (५१) शक्तिपीठ हैं उनकी (पीठों की) संख्या गणेशों की संख्या समान है । अतः पीठों की और गणेशों की दोनों की संख्या के समान होने से पराम्बा भगवती गणेशरूपिणी और पीठरूपिणी हैं ।

जिस प्रकार भगवती श्रीगणेश, पीठ, राशिनक्षत्ररूपिणी हैं उसी प्रकार श्रीविद्या पञ्चदशी मूलविद्या भी गणेशादिरूपिणी है यथा शक्तिकूट (सादिकूट सकलह्रीं) अकार से लेकर अःकार तक सोलह स्वरात्मक हैं । ककारादि से तकारान्त अक्षर (वर्ण) रूप कामराजकूट (ह स क ह ल ह्रीं) है । और अंत में थकार आदि सकारान्त तक वर्णों वाला वाग्भवकूट (कादिकूट) है (तीन कूटों की रेखाओं में आदि कादि और थादि पञ्चाशत् वर्णमाला है (ह ल क्ष) मिलाकर ५१ व्यष्टि समष्टि भेद से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चार वाक् चतुष्टय इस प्रकार इन सभी

शब्द समूहों की ईशी होने से श्री विद्या गणेशरूपिणी है ।। बिन्दु नाद विनिर्मुक्त एक कूट एक बिन्दुरूप जो पाँच हैं वे एक, नादरूप पाँच-एक, । इसी तरह तीनों कूटों में तीन-तीन - इस प्रकार बिन्दु तीन, नाद तीन और इन छह को इनसे अन्य तीन कूटों में मिलाने से नवसंख्या होती है, अतः पञ्चदशी महाविद्या ग्रहरूपा है ।।

सम्प्रदायार्थ प्रकरण में पञ्चदशी महामन्त्र में सैंतीस वर्ण कहे गये हैं उन सैंतीसों में से दस श्रीकण्ठों (अकारों) की अपने अपने व्यञ्जनों से साथ गणना करने से दस संख्या का बाध हो जाता है अर्थात् मिल जाती है व्यञ्जनों से तब सैंतीस में दस कम हो जाने से सत्ताइस संख्या बचती है अतः श्रीविद्या सत्ताइस नक्षत्र (अश्विनी से रेवती तक) रूपिणी है ।। उक्ति भी है -

''**हृल्लेखात्रयसंभूतैस्तिथिसंख्यैस्तथाक्षरैः ।।**
अन्यैर्द्वादशभिर्वर्णैरिषा नक्षत्ररूपिणी ।। यो. हृ . २/६५''

अर्थात् हृल्लेखात्रयसम्भूतैः - हृल्लेखा (ह्रीं) में हकार, रेफ , ई - बिन्दु और नाद ये पाँच हैं तीन हृल्लेखाओं के पाँच पाँच -योग से पन्द्रह संख्या हुई तथा क, ए, ई, ल, ह स क ह ल, सकल = योग से बारह संख्या हुई = इन दोनों संख्याओं को (१५+१२) जोड़ने से सताईस संख्या होती है । अतः इस संख्या योग से श्रीविद्या नक्षत्ररूपिणी है ।।

तीन हृल्लेखाओं (ह्रीं) से और हृल्लेखा रहित तीन कूटों से (कादि हादि सादि) योगों से छह संख्या होने से श्री विद्या (महामन्त्र) षडयोगिनी (डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनी- योगिनी हृदय ग्रन्थ में इन छह का ही प्रतिपादन किया है- ब्रह्मरन्ध्र स्थित याकिनी, जो अमृतादिसम्पूर्ण कलाओं से आवृत है, इसका षोढ़ान्यास में वर्णन है) रूपिणी है, मुख्य रूप से (हृदय रूप) से अर्थात् योगिनी हृदय में प्रतिपादन-तीन हृल्लेखाओं के और तीन कूटों के योग से षडविध योगिनीरूपा श्रीविद्या है ।।

तीन हृल्लेखाओं (ह्रीं) का तीन लकारों का (तीनों कूटों के) योग

बारह होता है (ह र् ई, ल, ह र् ई ल, ह र् ई ल = १२) तीन हल्लेखाओं का पृथक्करण किये बिना तीन लकारों के योग से १२ संख्या होने से महाविद्या राशि रूपिणी है ।।

अथवा - "योगिनी हृदय के २/६६ वीं कारिका के अन्त्यवर्जितै:" पद का समावेश करें तो, संगति इस प्रकार होगी कि पञ्चदशाक्षरी महाविद्या में तीनों कूटों के अन्त्य के (ह्रीं) रहित केवल क ए ई ल ह स क ह ल सकल ये कुल बारह वर्ण रहते हैं अत: महाविद्या बारह राशि रूपिणी है ।।

ह्रीं वर्जन का अभिप्राय नहीं है, संकेत यह है, कि पञ्चदशी महामन्त्र में तीन लकारों के वर्जन से और ह्रीं" के मेलन से बारह संख्या निष्पन्न होती है यह वरिवस्याकार का अभिमत है । एवं गणेशादिषट्कत्व (गणेश ग्रहनक्षत्रयोगिनी राशि पीठ -६) पञ्चदशी मूलविद्या में "देवीं मन्त्र मयी०" रूप से अन्य रूप की भी अभेद सिद्धि होती है "तदभिन्नस्यतदभिन्नत्वम" इस शास्त्रीय न्यायवचन बल से सिद्ध होने से अभेद होने से गणेशादि षट्कत्व में अभेद है ।।३८।।

३९ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा-: एवं चक्रराजेऽपि गणेशादित्वम्। चतुरस्त्राभिस्तिसृभिर्वर्तुलाभिस्तिसृभि: रेखाभिश्चतु-र्विंशतिदलै: पञ्चचत्वारिंशत्कोणैर्घटनाचक्रे गणेशत्वम् । त्रैलोक्य-मोहनाद्यै: सर्वानन्दमयान्तैर्नवभिश्चक्रैर्ग्रहत्वंचक्रराजे । वृत्तत्रयं धरणीत्रयं मन्वस्त्राणां विभज्य १४ गणनेन विंशति:, सप्तभिरितरै-स्त्रैलोक्यमोहनसर्वसौभाग्यदायकातिरिक्तैश्चक्रराजे सप्तविंशति-संख्यायोगान्नक्षत्ररूपत्वम् । बिन्दुत्रिकोणवसुकोणा: संहृतिचक्रम्, द्वे दशारे चतुर्दशारञ्च स्थितिचक्रम् अवशिष्टं सृष्टिचक्रमित्येत-त्रिप्रकारत्वं चक्र संकेते स्पष्टम् । तथा च स्थिति संहृति चक्रे द्वे द्वे पद्मे वसुषोडशदले वृत्तमेकं भूगृहं चैकमिति षड्भिर्योगात् - श्रीचक्रं योगिनीरूपम् ।।३९।।

अर्थ -: जिस प्रकार पूर्व प्रतिपादन में पञ्चदशी महाविद्या का गणेशादि षट्क से अभेद सिद्ध किया गया था, अब इसी प्रकार श्रीचक्रराज में भी गणेशादित्व प्रतिपादित करते हैं - यथा - श्रीचक्र के चतुरस्र की तीन रेखाएँ , तीन-तीन वृत्त रेखाएँ , चौबीस दल (षोडशदल और अष्टदल) और पैंतालीस कोण गणना से गणेश से अभेद हैं, त्रैलोक्यमोहन से लेकर सर्वानन्दमय नवम आवरण तक (त्रैलोक्यमोहन[१], सर्वाशा-परिपूरक[२], सर्वसंक्षोभण[३], सर्वसौभाग्यदायक[४], सर्वार्थ साधक[५], सर्वरक्षाकर[६], सर्वरोगहर[७], सर्वसिद्धिप्रद[८], सर्वानन्दमय[९]- ये नव आवरण श्रीचक्र में) इन नव आवरण नामक नवचक्रों से श्रीचक्र नवग्रहरूप है । तीन वृत्त तीन धरणीसदन और चतुर्दशत्रिकोणों के गिनने से २० तथा अवशिष्ट अन्य जो सात आवरण हैं इनसे अतिरिक्त हैं । वे त्रैलोक्यमोहन और सर्वसौभाग्यदायक इनसे अवशिष्ट सात सर्वाशापरिपूरक[१] सर्वसंक्षोभण[२], सर्वार्थसाधक[३], सर्वरक्षाकर[४], सर्वरोगहर[५], सर्वसिद्धिप्रद[६], और सर्वानन्दमय[७] २० + ७ =२७ संख्या योग से चक्रराज नक्षत्र रूप है। बिन्दु, त्रिकोण और अष्टकोण ये संहार चक्र हैं, दो दसकोण, और चतुर्दशार ये स्थितिचक्र हैं, अवशिष्टचक्रसृष्टिचक्र हैं (भूपुर, वृत्तत्रय, षोडशदल, अष्टदल) यह त्रिप्रकार श्रीचक्रराज का "चक्रसंकेत" (योगिनीहृदय के संकेत चक्र संकेत में स्पष्ट किया गया है तथा चेति-स्थितिसंहृत चक्रे द्वे द्वे पद्मे वसुषोडशदले वृत्तमेकं भूगृहं चैकम् ।। षड्भिर्योगाच्छ्री चक्रे योगिनीरूपम् ।।३९।।

४० गद्यखण्ड- मूलम् -यथा-: स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणानि शक्तय उच्यन्ते । तानि पञ्चच, पराङ्मुखाग्रत्रिकोणान्यनला उच्यन्ते । तानि चत्वारि बिन्दुः पद्मद्वयगर्भितं वृत्तं भूगृहञ्चेति द्वादशसंख्यैर्घटनाच्चक्रस्य राशिरूपताऽपि । चक्रस्य विद्याक्षर-जन्यत्वात्तदभेदस्य सिद्धत्वात्तेन हेतुनापि चक्रराजस्य गणेशादि-रूपत्वम् , देव्या रूपान्तरत्वाच्च तद्रूपता सिद्ध्यति । पीठरूपतापि

गणेशादीनां पञ्चानां मेलनेन पञ्चपञ्चाशत् संख्यासम्पत्तेः । यदपि मातृकासंख्याकानि पीठानि मातृकाश्चैकपञ्चाशत् संख्याकाः पीठानि कामरूपादिच्छायाच्छत्रान्तान्येक पञ्चाशत् संख्याकानि, तथापि ''ओ'' (ओड्याण)'', जा'' (जालन्धर), ''पू'' (पूर्णगिरि), ''का'' (कामगिरि) नां पीठानां प्राधान्येन पुनर्गणनात् पञ्चाशत् संख्याकानि पीठानि सम्पद्यन्ते । गणेशादीनांञ्च सम्मेलनेन पञ्चपञ्चाशत् संख्या सम्पद्यते । तत्र गणेशः ''एकः ग्रहानव, नक्षत्राणि सप्तविंशतिः, योगिन्यः षट्, राशयो द्वादशेति । ''वरिवस्यारहस्ये''तदुक्तं विस्तरेण - २/९७-९८ कारिके

''यावन्मातृकमुदितान्येकसमेतानि पञ्चाशत् । पीठानि पुनर्गणितान्योजापूकानिचत्वारि ।। गणग्रहभादीनां शशिनिधितार-र्तुसंख्यानाम् । मेलनतः पीठानि ज्ञेयान्येतेषु पञ्चपञ्चाशत्'' इति ।।४०।।

अर्थ -: स्वाभिमुख अग्रभाग (▽) वाले त्रिकोणों को ''शक्ति'' कहा जाता है । वे पाँच हैं जो त्रिकोण पराङ्मुख (ऊद्ध्र्वमुख-) अग्रभागवाले हैं उन्हे ''अनल'' कहा जाता है (शिव) वे चार हैं । उक्ति भी है - ''पञ्चशक्ति चतुर्वह्नि संयोगाच्चक्रसम्भवः'' पद्मद्वयमहीत्रयम् (यो.हृ. - १/४७)-

बिन्दु वृत्त में दो पद्मवलय गर्भित हैं और भूपुर है इनकी गणना से बारह संख्या होती हैं- (बिन्दु-१, वृत्त- ३(१) भूपुर रेखा - ३,(१), पाँच शक्ति त्रिकोण, चार शिव (अनल) त्रिकोण = कुल बारह = ५+४+१+ १+१ = १२) इस प्रकार चक्रराज की राशिरूपता भी है। श्रीचक्र की पञ्चदशी महाविद्या के अक्षरों से उत्पत्ति होने से चक्र और मन्त्र में अभेद सुसिद्ध है, इस हेतु से भी चक्रराज गणेशादि षट्क रूप हैं। देवी के रूपान्तर होने से चक्र की श्री देवी रूपता सिद्ध होती है । चक्रराज की पीठरूपता भी गणेशादि पाँचों की संख्या मिला देने से पचपन संख्या सिद्ध होती है, इस आधार पर वह पीठरूप भी है । पीठ

यद्यपि मातृकाओं की संख्यावाले हैं मातृकाएँ इक्यावन संख्या वाली हैं और पीठ कामरूप पीठ से लेकर छायाच्छत्र पीठ तक इक्यावन हैं तथापि "ओ" (ओड्याण), "जा" (जालधर), "पू"(पूर्णगिरि), "का" (कामगिरि) चार पीठों की प्रधान रूप से गिनती कर मिलाने से पञ्चाशत पीठ होते हैं । गणेशादि की संख्या मिलाने से पचपन संख्या होती है । वहाँ गणेश एक, ग्रह-नव, नक्षत्र सत्ताइस, योगिनियाँ छह, और राशियाँ बारह । वरिवस्या रहस्य" में विस्तार से कहा गया है- यथा-

जितनी संख्याओं में मातृकाएँ कही गई हैं अर्थात् इक्यावन तदनुसार पीठ भी इक्यावन हैं परन्तु उनकी मुख्य रूप से गणना, "ओ, जा, पू, का " इस तरह से ही की जाती हैं, अतः मातृकावत् पीठ भी इक्यावन हैं । गणेश और ग्रह तथा नक्षत्रादि की जैसे १-गणेश-१ (शशी), २, ग्रह नव (निधि), -३ नक्षत्र- २७ (तारा), ऋतु- ६ , सूर्य- १२ (नामैकदेशे नामग्रहणम्" न्यायानुसार इन संख्याओं को मिलाने से ५५ पचपन पीठ संख्या ज्ञात होती है ।।४०।।

४१ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा- चक्रराजस्य विद्याक्षरजन्यत्वं कथमित्युच्यते कत्रितयात् - ईकाराच्च महाबिन्दुमयं सदाशिवासनं जायते तदुक्तम् - यथा-

इच्छाज्ञानक्रियारूपमानत्रयसंयुतम् ।।

सदाशिवासनं देवि महाबिन्दुमयं परम् ।। (यो.हृ.२/५५)

तदर्थस्तु इच्छादयस्तिस्रः शक्तयो रूप्यन्ते यस्मात् स "ईकारः" मादनान्तककाराणां त्रयञ्चेत्येताभ्यां संयुतं जनितं महाबिन्दुमयं सदाशिवासनं ब्रह्म विष्णुरुद्रेश्वराः पादाः फलकं सदाशिवः तादृशसर्वा- नन्दमयं चक्रम् । अथवा इच्छाज्ञानाक्रिया- रूपाश्च ते मादनाश्च त्रयञ्चेति द्वन्द्वः । अत्र त्रय शब्देन बिन्दुत्रयात्म- कत्वादीकारो ग्राह्यः । सर्वथापि ककार त्रयात् - ईकाराच्च बिन्दूत्पत्तिः सर्वसिद्धिप्रदसर्वरोगहराख्यचक्रद्वयमपि मिलित्वा

नवयोन्यात्मकं भवति । तच्चतिसृभिर्लज्जाभिर्जातम् । अत्र यद्यपि हकाररेफ ईकार बिन्दुनादैश्चहृल्लेखात्रयस्य सम्मेलने पञ्चदशाक्षराणि भवन्ति । तथापि बिन्द्वादीनां - ईकारैः सह मेलने प्रतिहृल्लेखं हकारो रेफ ईकारश्चेतित्रयमेवेति नवाक्षरसमूहेनैव नवयोन्यात्मकस्य चक्रद्वयस्य जनिः सर्वरक्षाकर सर्वार्थसाधक - सर्व सौभाग्यदायकाख्यं स्थितिचक्रत्रितयं तिसृभिः शक्तिभिः त्रिभिरनलैर्हकारद्वयेनैकादशस्वरेण च समुत्पन्नम् । तदुक्तम् -

मण्डलत्रययुक्तन्तुचक्रं शश्यनलात्मकम् ।।

व्योमबीजत्रयेणैव................... .(यो.हृ. २/५४)।।४१।।

अर्थ -: चक्रराज (श्रीयन्त्र) पञ्चदशी महामन्त्र अक्षरों से निर्मित है, यह किस प्रकार है- इसे प्रतिपादित करते हैं । यथा - मूलविद्या पञ्चदशी महामन्त्र में तीनों कूटों में तीन ककार हैं, उनसे और प्रथम कूट में "ई" उससे तथा श्रीयन्त्र में जो सर्वोपरि बिन्दु है उससे अर्थात् ये वर्ण बिन्दु सहित आसन हैं "योगिनीहृदय" ग्रन्थ में उक्ति है- इच्छाज्ञानक्रियारूपमादनत्रयसंयुतम् । सदाशिवासनं देवि । महाबिन्दुमयं परम् । (२/५५) अर्थात् - इच्छा, ज्ञान, क्रिया नामक शक्तियाँ रूप्यन्ते जन्यन्ते यस्मात् - याने ये तीन शक्तियाँ प्रकट होती हैं जिससे तथा उस ईकार के सहित मादनान्त (तीन ककार) इनसे मिलकर महाबिन्दुमय सदाशिवरूप आसन - (बैन्दवासनायैनमः पादुकां पूजयामि) (ललिता सहस्र. ९०५) है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर चार पाद हैं, और फलक -सदाशिव (पञ्चमुख) ऐसा "सर्वानन्दमय" चक्र है । अथवा व्याख्या भेद से "इच्छाज्ञान क्रिया रूपाश्च ते मादनाश्च त्रयंश्चेति ऐसा द्वन्द्व समास मानें - तो यहाँ "त्रय" शब्द से तीनबिन्दु रूप ईकार यह लें, तो तीन बिन्दुओं से निर्मित ईकार तथा तीन ककार से बिन्दु की उत्पत्ति हुई तब - (सर्वानन्दमय) तथा सर्वसिद्धिप्रद, सर्वरोगहर नामक दो चक्रों सहित मिलकर नवयोन्यात्मक होता है ।। वह नवयोन्यात्मक चक्र तीन लज्जा

बीजों (ह्रीं) से उत्पन्न हुआ है। यहाँ यद्यपि, हकार, रेफ ईकार, बिन्दु और नादों से ह्रीङ्कारत्रय के सम्मेलन करने से पञ्चदश अक्षर होते हैं, तथापि बिन्दु आदि अवयवों के ईकारों के साथ मिलाने से प्रत्येक हल्लेखा में हकार, रेफ और ईकार तीन ही नवाक्षर समूह से ही नवयोन्यात्मक दोनों चक्रों की उत्पत्ति की है। सर्वरक्षाकर, सर्वार्थसाधक, सर्वसौभाग्यदायक नामक तीन समष्टि रूप स्थिति चक्र, तीन शक्तियों से, और तीन अग्नि (र्) और दो हकार तथा एकादश स्वर (ए) से समुत्पन्न हुआ है ।। कहा है -

"**मण्डलत्रययुक्तन्तु चक्रं शश्यनलात्मकम् । व्योमबीज-त्रयेणैव** ...।। (यो.हृ./२/५४)

अर्थात् - दशारद्वय और मन्वस्र (चतुर्दशार) ये दोनों मण्डलत्रय हैं इनसे युक्त चक्र शशि और अनलात्मक है। व्योम बीज (ह) त्रय से ही ।।४१।।

४२ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा - अत्र मण्डलत्रयेति दशारद्वयं चतुर्दशारञ्चेत्यभिप्रेतम् । व्योमबीजत्रयेण इत्यत्र व्योमबीजे त्रयञ्चेति विग्रहः । त्रयपदेन कोणत्रयात्मकत्वात् - एकारः, बीजपदेन हकारौ च ग्राह्यौ । अथवा व्योमनी च बीजञ्चेति विगृह्य व्योमनीति हकारद्वयं बीजपदेन एकारः -तस्य ब्रह्माण्डकटाहं प्रति बीजभूतत्वात् । हादिपक्षे तु बीजत्रयेणेति हकारत्रयमेव ग्राह्यम् - इति न व्याख्या क्लेशः । सर्वसंक्षोभण सर्वाशापरिपूरके सकाराभ्यां जनिते । उक्तञ्च सरोरुहद्वयञ्च लाक्तैः । शाक्तैः सकाराभ्यामित्यर्थः । अक्षीणि इतिवत् बहुवचनम् । लकारैश्चतुर-स्राणि जनितानि इति विद्याक्षरैश्चक्रजनिः । देवता विद्या चक्रत्रितयेन गुरोरभेदः । तेन गणेशादि षड्रूपः श्रीगुरुः, तत्प्रसादेन स्वयं साधकोऽपि षड्रूपः । ४२वें गद्य खण्ड-मूल-अर्थ यथा -

४१वें गद्यखण्ड में जो योगिनी हृदय (२/५४) का उद्धरण दिया गया है जिसमें उक्ति है, कि "दशारद्वय और चतुर्दशार" ये दोनों मण्डलत्रय हैं, इनसे युक्त चक्र शशि और अनलात्मक हैं, व्योम बीज (ह) त्रय से

ही -: (अगले खण्ड में स्पष्ट प्रतिपादन) -यथा- अत्रेति-: यहाँ "पूर्व श्लोक में जो कहा, कि "मण्डलत्रययुक्तं तु०" इति इसमें दो दशारचक्र, और चतुर्दशार (१४ त्रिकोण) चक्र स्वीकृत हैं और जो दूसरी उक्ति है "बीजत्रयेणैन०" (यो.हृ.२/५४), इसका अभिप्राय यह है, कि "व्योमबीजत्रयेण" इसमें विग्रह यह है- "व्योम बीजे त्रयञ्च इति- त्रय पद से तीन कोण रूप होने के कारण- अर्थात् एकार (त्रिकोण) और बीज शब्द से दो हकार लेना चाहिये, अथवा "व्योमनी च बीजञ्चे ति" विग्रह कर के व्योमनीति दो हकार और बीज पद से "एकार" क्योंकि एकार याने गुह्य बीज यह ब्रह्माण्डकटाह की उत्पत्ति में मूलकारण (उत्पत्तिस्थान) है । किन्तु हादि पक्ष में "बीजत्रयेण" से तीन हकार ही ग्राह्य हैं, इस प्रकार व्याख्या करने कल्पना गौरव नहीं है । सर्व संक्षोभण चक्र और सर्वाशापरिपूरक चक्र ये दोनों ही दो सकारों से उत्पन्न हैं । और कहा है दोनों सरोरुह (दल, या चक्र) लाक्तैः अर्थात् शाक्तैः दो सकारो से यह अर्थ है, (लाक्तै अर्थात् शाक्तैः -लकार शाक्तभाग है) यहाँ लाक्तै, शाक्तैः पदों में बहुवचन "अक्षीणि" जैसे बहुवचन है- मूल विद्या पञ्चदशी में स्थित तीन लकारों से (कादिकूट में "ल",) (हादिकूट में "ल",) और सादिकूट (शक्तिकूट में "ल") चक्र की उत्पत्ति होती है । देवता (भगवती), विद्या (पञ्चदशी) मूलविद्या और चक्र (श्रीचक्र) इन तीनों से श्रीगुरु का अभेद है। इस कारण गणेश आदि षड्रूप (गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि और पीठ) इनका श्लोक "गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् । देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्" श्रीगुरु हैं, उन श्रीगुरु के अनुग्रह से (शक्तिपात) शिष्य मुमुक्षु-जिज्ञासु, अधिकारी साधक भी षड्रूप अर्थात् - गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि और पीठ रूप हो जाता है । उक्ति है-:

देव्यादेहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च ।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सन् प्रकाशते ।।यो.हृ.२/६७½

इत्युक्तत्वात् - अर्थात् - देवी के देह में जो अवयव जिन रूपों

में माने गये हैं वैसे ही अवयव गुरु देह में भी हैं । देवी और गुरु के प्रसाद से शिष्य भी तद्रूप होता हुआ प्रकाशित होता है याने अभेद रूप से ऐक्य हो जाता है ।

४२ - अत्र यद्यपि गणपदस्य समुदायार्थकस्य समुदायि-सापेक्षत्वेन समुदायिना देवताक्षररेखाणां भेदे तद्भेदस्यावश्यकत्वं नक्षत्रत्वादेरपि संख्यामात्रस्यानुगमकत्वेऽपि संख्यावतां विरुद्ध-धर्माधिकरणत्वेन भेदस्य संख्यावतां सम्मतत्वेन भिन्नाभिन्नत्वात्तेन च नैकस्यापि धर्मस्याभेदव्यापकतेति कथमभेदः स्यादितीयं शङ्का समुदेति, तथापि वचनबलादेव समुदायिनां संख्यावताञ्चाभेदस्य सिद्धत्वात् समाधानम् । उपक्रमादि निर्णीत तात्पर्यकस्य शब्दस्य प्रत्यक्षादिनिखिल प्रमाणेभ्योऽपि बलवत्तायाश्चन्द्र प्रादेशिकत्व-भ्रमादावन्यत्र चौपनिषदैर्बहुतरं साधितत्वात् । इत्थं त्रिपुराम्बा, विद्या, चक्रं, गुरुः, स्वयञ्चेति पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकोऽर्थः ।।४२।।

अर्थ -: यहाँ देवी गुरु और शिष्य में अभेदत्व के विषय में एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है, कि गणशब्द समुदायार्थक है, उसमें समुदायार्थक गण पद में समुदायि की अपेक्षता होगी और जो समुदायी हैं वे देवता, अक्षर, और रेखाएँ हैं । ये परस्पर भिन्न हैं तब समुदाय का अभेद किस प्रकार से होगा । इसी प्रकार नक्षत्रत्वादि में केवल संख्या ही (२७ नक्षत्र, १२ राशि) अनुगत धर्म है परन्तु जो संख्यावान् हैं, नक्षत्रादि वे विरुद्धधर्म के अधिकरण (आधार) हैं, अतः संख्या वालों का भेद सिद्ध होने से भिन्न भिन्नता मानना पड़ेगा, इसलिये इनमें से (नक्षत्र, राशि) और (देवी, गुरु, शिष्य) एक भी धर्म अभेद व्यापक नहीं है, तब कैसे अभेद उनके ज्ञापक का होगा ? यह शङ्का है पर इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि वचन बल से ही (वचन बल ये है- "इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परंवपुः" **चतुर्भिः शिवचक्रैश्चशक्ति**

चक्रैश्च पञ्चभिः । नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।। त्रि. उ. श्लोक ७०।। अतो मन्त्रे गुरौ देवे न भेदश्च प्रजायते इत्यादि) समुदायिओं और संख्यावानों का अभेद सिद्ध होगा यही समाधान है । तथा उपक्रमादि - (उपक्रमोपसंहारौ - अभ्यासोऽपूर्वता फलम् । अर्थवादोप-पत्तीचलिङ्गं तात्पर्यनिर्णये) भेदों से तात्पर्यनिर्णीत शब्द की प्रत्यक्षादि (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (वेदशास्त्र) अर्थापत्ति और प्रत्यभिज्ञा) समस्त प्रमाणों से भी प्रबलता सिद्ध है, जैसे उपनिषदों की व्याख्या में चन्द्र प्रादेशमात्र है । (बित्ते भर लम्बा चौड़ा) ऐसा भ्रमवश सिद्ध किया जाता है, इस प्रकार का प्रयास अत्यधिकरूप से जहाँ तहाँ किया गया है, इस प्रकार का अन्तिम सारनिष्कर्ष यही है, कि त्रिपुराम्बा, पञ्चदशी मूलविद्या, श्रीचक्र (श्रीयन्त्र) और श्रीगुरु तथा स्वयं (शिष्य) इन पाँचों का भी पूर्ण अभेद है निस्संदिग्ध है । यही मूलविद्या मन्त्र का कौलिक अर्थ है ।। अर्थात् - पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम् । (यो. हृ. ५१ श्लो.) ।।४२।।

कौलिकं कथयिष्यामि चक्रदेवतयोरपि ।
विद्यागुर्वात्मनामैक्यम् तत्प्रकारः प्रदर्श्यने ।।२/५१ यो.द.२/५१।।

४३ गद्यखण्ड-मूलम् - यथा-: सर्वरहस्यार्थ उच्यते - ककारादिभिर्द्वादशभिरानुलोम्येन भकारादिभिः प्रातिलोम्येन द्वादशभिश्चयुक्ताः सूर्यस्यतापिन्यादयो द्वादश कलाः, षोडशभिः स्वरैर्युक्ताः-....वह्नेर्धूम्रार्चिरादि कलाः । एवं रविशशिवह्निकलाभि-राकीर्णैः पञ्चाशद्भिर्वर्णैरभिन्ना कुलकुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी विद्युत्पुञ्जप्रख्या मूलाधारस्थपद्मकर्णिकास्थ शृंगाटकरूपा त्रिकोणादुपरि बिन्दुरूपं ज्योतिर्लिङ्गमावेष्ट्य सार्धत्रिवलया-कारेणाधोमुखी समुपविष्टा योगमर्य्यादयायोगिभिरुद्ध्र्वमुखतयो-त्थाप्यते। सा चोत्थिता मूलाधारानाहताज्ञाचक्रेषु वह्निसूर्यसोम-मण्डलानि भित्वाव्योम्नि ललाटोद्ध्र्वप्रदेशे विद्यमानस्य चिच्छशि-

मण्डलस्याधोमुखसहस्त्रारकर्णिकारूपस्य मध्ये स्थितयाऽकुल-कुण्डलिन्या संगम्य ततोऽमृतपूरं स्त्रावयित्वा डाकिन्यादिमण्डला-न्याप्लावयन्ती स्वयमपिततत्पानमत्ता भूत्वा पुनस्तेनैव सुषुम्नामार्गेण परावृत्य स्वस्थाने सुखंस्वपिति । सर्वमेतद्योगगम्यम् । अन्येषांतु परोक्षज्ञानगोचर एव ईदृश्याः कुण्डलिन्याः मातुर्विद्याया स्वस्य चाभेद इति ''रहस्यरूपोऽर्थः'' (सर्वरहस्यार्थः) ।।४३।।

सोमस्यामृतादयः षोडशकलः, यकारादिभिर्दशवर्णैर्युक्ता ललाटोद्ध्र्वं समारभ्य कपालोद्ध्र्वावसानकम्।

द्व्यंगुलोर्ध्वे शिरोदेशे परं व्योम प्रकीर्तितम् ।। (स्वच्छंदसंग्रहे)

अर्थ -: सर्वरहस्यार्थ का विवेचन किया जा रहा है-: यथा-ककारादि (क से लेकर ठ- पर्यन्त) अनुलोम द्वारा, तथा भकारादि (भ से लेकर ड पर्यन्त) प्रतिलोम द्वारा बारह कलाऐं तपिन्यादि (तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीची, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा कला बारह) सोलह स्वरों से युक्त सोम की अमृतादि सोलह कलाएँ (अं- अमृता, आं मानदा, इं पूषा, ईं तुष्टि, उं पुष्टि ऊं- रति, ऋं धृति, ॠं शशिनी, ऌं चन्द्रिका, ॡं कान्ति, एं ज्योत्स्ना, ऐं श्री, ओं-प्रीति, औं (अंगदा, अं पूर्णा, अः पूर्णामृता कला १६) तथा यकारादि दस वर्णों से युक्त वह्नि की धूम्रार्चि आदि कलाएँ (यं धूम्रार्चि, रं ऊष्मा, लं ज्वालिनी, वं ज्वालिनी, शं विस्फुलिङ्गिनी, षं सुश्री, सं सुरूपा, हं कपिला ळं हव्यवाहिनी, क्षं कव्यवाहिनी १० कला) हैं । इस प्रकार सूर्य चन्द्र वह्नि की कलाओं से युक्त पञ्चाशत् वर्णों अकारादि से क्षान्तवर्ण पचास) से अभिन्न अकुलकुण्डलिनी जो विसतन्तुतनीयसी अर्थात् कमलनालदण्ड के एकतन्तु जैसी सूक्ष्म है, विद्युत समूह की प्रभा जैसी प्रभावाली मूलाधार में स्थित पद्मकर्णिका में स्थित श्रृंगाटक (सिंघाड़े के ▽ आकार जैसी) जैसी त्रिकोणाकार से ऊपर बिन्दुरूप ज्योति-र्लिङ्ग को लपेट कर साढ़े तीन घेरे के रूप में अधोमुखी होकर स्थित है;

जो योग की मर्यादा के द्वारा योगिजन उसे ऊद्र्ध्वमुख करके उठाते हैं। वह उठी हुई कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्रों वह्नि, सूर्य सोम मण्डलों को भेद कर परम व्योम में; जो ललाट के ऊद्र्ध्व प्रदेश में विद्यमान है- व्योमकला का लक्षण इस प्रकार है -

''द्वादशान्तं ललाटोर्ध्वं कपालोर्ध्वावसानकम् ।
द्व्यंगुलोर्ध्वं शिरोदेशं परंव्योम प्रकीर्तितम् ।।''

उस व्योम में विद्यमान चिद्रूप शशिमण्डल के जो शशिमण्डल अधोमुख सहस्रदलकमल की कर्णिका के रूप में है, उसके मध्य में स्थित अकुल कुण्डलिनी से संगम करती है। उससे अमृत पूर का स्राव होता है उस भरपूर होने वाले स्राव (अमृत का) डाकिनी आदि छह योगिनियों को जो इन मूलाधारादि चक्रों में हैं, उन्हे आप्लावित करती है तथा स्वयं भी उस अमृत के पान से मत्त होकर पुनः उसी सुषुम्णा मार्ग से ही वापस होकर अपने स्थान में सोती है सुखपूर्वक। परन्तु ये सभी क्रियाएँ उन योगिजनों के ही लिये अनुभवगम्य हैं। जो योगशास्त्र की मर्यादा का परिचय रखते हैं ऐसे उन के लिये यह परोक्षज्ञान गोचर ही है, ऐसी कुण्डलिनी माता रूपा विद्या (पञ्चदशी मूलविद्या) का उपासक से अभेद है, (वह भी श्री सद्गुरु की करुणादृष्टि से ही सम्भव है) यही सर्वरहस्यार्थ का सार निष्कर्ष है ।।४३।।

४४ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा-: जातिगुणक्रियासम्बन्धादि शून्ये वाचामगोचरे सर्वेन्द्रियागम्ये मनसोऽप्यविषये वेदान्त महा- तात्पर्य विषये शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वातीते महतो महीयसि तथैवाणोरणीयसि निरुक्तलक्षणव्योम्नोऽप्युपरि स्थितिमति उपासनार्थ कल्पित स्थानविशेषेणोपलक्षिते विश्वाधिष्ठाने स्वप्रकाशे चित्सुखस्वरूपे परे ब्रह्मणि स्वात्मा नियोज्यः , प्रत्यक् चैतन्या- भिन्नपरब्रह्मावबोधेन भेदकाज्ञाननिवर्तनद्वारा तदात्मनावस्थिति-

विधेया, "ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतेः । सकल तत्त्वमूलभूतत्वादयं महातत्त्वार्थ उच्यते ।।४४।।

अर्थ -: महातत्त्वार्थ का विवेचन- यथा-: पर ब्रह्म में अपना आत्मा नियोजित करना साधक मुमुक्षु द्वारा यही मुख्य अभिप्राय है- विस्तार इस प्रकार है- वह पर ब्रह्म जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्धादि से शून्य है चारों वाणियों (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी) से अगोचर, अर्थात् अवर्णनीय है, समस्त इन्द्रियों से (मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ) अगम्य है- अर्थात् षड्विध ऐन्द्रियक सन्निकर्षज प्रत्यक्ष का विषय नही है । पाँच विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) का विषय नहीं हैं, उक्ति है ।

"यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् " श्रुतियों की उक्तियाँ हैं । वह परब्रह्म वेदान्तों के महातात्पर्य का विषय है, अभिलक्ष्य है । शिवादि क्षित्यन्त छत्तीस तत्त्वों से भी अतीत है, वह महान् से महान् वैसे ही अणु से भी अणु है, (यहाँ अणु, महान्) ये परिमाण रूप में विवक्षित नहीं हैं, क्योंकि उस में परिमाण की कोई स्थिति नहीं है, अतः "अणोरणीयान् महतो महीयान् " इस श्रुत्युक्ति में विरोध नहीं है । व्योम का जो लक्षण किया गया है उससे भी ऊपर जो स्थित है "अनेककोटिब्रह्माण्डकोटीनां बहिरूर्ध्वतः" यह रुद्रयामलोक्त वचन स्मरण रखने योग्य है । केवल उपासना के लिये कल्पित स्थानविशेष से उपलक्षित वह परब्रह्म है, वह विश्व का अधिष्ठान है, स्वप्रकाश है चित्सुखस्वरूप है आनन्दात्मक है, असच्चिदेकं ब्रह्म (महानिर्वाण तन्त्रे) (सच्चिदानन्दात्मक) ऐसे परब्रह्म में स्वात्मा का नियोजन करना चाहिये। प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म के अवबोध के द्वारा भेदकज्ञान के कारण अद्यावधि जो अभेदानुभूति नहीं हुई थी उस अभेदावस्था को समस्त भेदों के रूप अज्ञान की निवृत्ति के द्वारा तदात्मा से अवस्थिति करनी चाहिये "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" इस वेदोक्ति के बल से समस्त तत्त्वों के मूल भूत होने से इसे "महातत्त्वार्थ " कहा जाता है ।।४४।।

४५ गद्यखण्ड-मूलम्-नामार्थशब्दरूपार्थौ चोच्येते-यथा-: तत्तद्वर्णार्थत्वात्तद्वर्णस्वरूपा च श्रीविद्येत्येव नामार्थ शब्दार्थौ । विद्यायामष्टपञ्चाशद्वर्णाः सप्त त्रिंशद्वर्णाः पञ्चादशद्वर्णा विभिन्न रीत्या गृह्यन्ते । सर्वेषां ब्रह्मवाचकत्वेन सामानाधिकरण्येनान्वयः, पक्षत्रयेऽपि ककारादीनामन्यतमस्य ब्रह्मवाचकत्वाद् - अन्येषां वर्णानां वैयर्थ्यपरिहारस्तु ''विश्वप्रकाश'' कोशादिरीत्या तत्तदक्षराणामनेकार्थ वाचकत्वेन योग्यतानुसारेणार्थकरणात्कार्यः। ''भूयोऽपि पथ्यं वक्तव्यम्'' इतिरीत्या केषुचित्स्थलेषु पौनरुक्त्यं न दोषः । एवञ्च सर्वेषामक्षराणां तत्तद्वाचकत्वेन रुढ्यैव प्रत्यक्षरं सोर्लोपस्यावश्यकत्वेन प्रातिपादिकमात्रावशेषाद्वोपासकजनेषु प्रसिद्धत्वाद्वा सम्भाव्यत्वाद्वा पारिभाषिकार्थरूपत्वाद्वा परिपक्वार्थ-रूपत्वाद्वा नामार्थ इति संज्ञा ।।४५।।

अर्थ -: श्रीविद्या ही नाना वर्णरूपिणी है और उन-उन वर्णों की अर्थस्वरूपिणी भी श्रीविद्या ही है- यही नामार्थ और शब्दरूपार्थ कहा गया है । पञ्चदशी मूलविद्या में अट्ठावन वर्ण हैं या सैंतीस वर्ण हैं या पन्द्रह वर्ण हैं, इनका विभिन्न रीतियों से ग्रहण किया गया है । ये सभी वर्ण ब्रह्मवाचकत्व रूप से सामानाधिकरण्य से इनका अन्वय सिद्ध होता है । इस रीति से तीन पक्षों में भी- १^म पक्ष- ५८ अक्षरों वर्णों का, २^य पक्ष ३७ वर्णात्मक, ३^य पक्ष १५ वर्णों का इन तीनों पक्षों में ककार आदि में से कोई भी ब्रह्मवाचक है, अन्यवर्णों की व्यर्थता का परिहार- "विश्व प्रकाश कोशादि" की रीति से उन उन अक्षरों के अनेकार्थवाचक होने से वर्णों की योग्यता, औचित्यादि से (अर्थबोधन शक्ति) अर्थ करने से कार्य सम्पन्न हो सकता है एक और भी न्याय है, "भूयोऽपि पथ्यंवक्तव्यम्-" इस रीति से किन्हीं स्थलों में पुनरुक्ति दोष नहीं होता। इस प्रकार सभी अक्षरों का उन उनके वाचक होने से रूचि के (प्रसिद्धि) द्वारा ही प्रत्येक अक्षर में सुबन्त विभक्ति होने पर "सु" का लोप आवश्यक

मानकर प्रातिपदिक मात्र मानकर यह उपासक समूह की प्रसिद्धि को मानकर या सम्भावना मानकर या परिपक्वार्थ रूप मानकर नामार्थ संज्ञा होती है।

- पुनः - मूलम् -: ननु ककारादिस्वरूपत्वं नामतः शब्दाभिन्नत्वम् । तथा च न स ककारस्यार्थः शब्दस्वरूपे शक्त्यभावात् । न हि घटमानय इत्यादौ घटशब्दस्या-नयन क्रियान्वयः । अत एव न शब्दार्थयोरभेदपक्षोऽपि युज्यते । वह्न्यादि शब्दोच्चारणे मुखदाहाद्यापत्तेश्चेतिचेन्न, शब्दस्य स्वस्वरूपेऽपि शक्तेस्तन्त्रवार्तिकादावुक्तत्वात् । भर्तृहरिणाऽप्युक्तम्-यथा-: "ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो यथा । तथैव सर्वशब्दानामेते पृथगवस्थिते" (ब्र. कां- ५५), तथा ककारादि वर्णरूपेत्यादि मन्त्रार्थः । अत्र शब्दरूपस्यैवार्थत्वेन वर्णनाच्छब्दरूपार्थोऽयमिति व्यपदिश्यते ।। इति ।।४५।।

अर्थ -: इस तरह एक प्रश्न यह हो सकता है, कि ककारादिस्वरूपत्व का अर्थ यह होगा नामतः शब्द से अभेद और वह नामतः ककार का अर्थ नहीं है; क्योंकि शब्दस्वरूप में शक्ति का अभाव है । "घटमानय" इत्यादि स्थलों में "घट" शब्द का "आनयन" रूपक्रिया से अन्वय नहीं होता । इसलिये शब्द और अर्थ का अभेद पक्ष भी युक्त नहीं है । यदि ऐसा होगा तो "वह्नि" शब्द के उच्चारण से मुख में दाहादि क्रिया होने की आपत्ति उपस्थित होने लगेगी तो ? न- ऐसा नहीं है; क्योंकि शब्द के अपने स्वरूप में भी शक्ति निहित रहती है, ऐसा "तन्त्रवार्तिकादि" में कहा गया है, यही भर्तृहरि ने भी कहा है कि "ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वंच द्वे शक्ती तेजसो यथा । तथैव सर्वशब्दानामेते पृथगवस्थितेः ।। ब्र.कां. ५५।।

अर्थात् जिस तेजकी दो शक्तियाँ एक ग्राह्यत्व और दूसरी ग्राहकत्व नामक वैसे ही समस्त शब्दों की ये दो शक्तियाँ पृथक् पृथक् रूप में अवस्थित रहती हैं । अतः "ककारादिवर्णरूपा इत्यादि मन्त्रार्थ होता है ।

यहाँ शब्द स्वरूप ही अर्थस्वरूप है ऐसा वर्णन करने से शब्दरूपार्थ" यह कहा जाता है ।।४५।।

४६ गद्यखण्ड-मूलम्-यथा -: नामैकदेशार्थो यथा "ककाररूपा, कल्याणी," इत्यादिना त्रिशत्यां पञ्चदशाक्षर्य्यां एकैकनानाक्षरमादितः कृत्वा तादृश नामानि प्रत्यक्षरं विंशतिरुक्तानि। तान्येव त्रीणि शतानि भवन्ति । तानि च मन्त्राक्षराणा-मर्थप्रकाशनार्थं प्रवृत्तानि । तथा च "ककारस्य "ककाररूपा कल्याणी=कल्याणगुण शालिनी प्रकाशनार्थ प्रवृत्तानि तथा च ककारस्य" ककाररूपा, कल्याणी, कल्याणगुणशालिनीत्यादयो विंशतिरर्थाः। तेषु प्रसिद्ध कोषव्याकरणादिरीत्या शक्तेरभावादेतद्बलादेव कल्पनस्यार्था-पत्तिशरणत्वात् । नामैकदेशे नामग्रहणमिति- "भीमो, भीमसेनः, सत्या = सत्यभामा, भामा इत्यादौ प्रसिद्धम्। तत्र च ककारादिना नामानन्त्यात्ककारस्याप्यनन्तार्थत्वे प्राप्तेऽयं नियमः । "एक एवार्थो नान्य" इति । तेषुच प्रत्यक्षर प्रथम नाम्नां नामार्थशब्दार्थ-रूपार्थाभ्यांपौनरुक्त्यादिहैकोनविंशतिरेवार्था विवक्षिताः। तथा च नामैकदेशार्थोऽप्येकोनविंशति विधः सम्पन्नः ।।४६।।

अर्थ -: नामैकदेशार्थ का विवेचन इस प्रकार है । यथा-: पञ्चदशी मूल विद्या के पन्द्रह अक्षरों (वर्णों) में एक एक अक्षर के जिसमें प्रथमाक्षर "क" के ककाररूपा, कल्याणी आदि बीस-बीस नाम कहे गये हैं, इस प्रकार प्रत्येक पन्द्रह अक्षरों के प्रत्येक के बीस बीस नाम हैं, योग से तीन सौ नाम होते हैं। वे तीन सौ नाम मन्त्र के अक्षरों का अर्थ प्रकाशन करने के लिये प्रवृत्त हैं, जैसे मन्त्र का प्रथमाक्षर "क" है, उसके ककाररूपा, कल्याणी, कल्याण गुणशालिनी इत्यादि बीस अर्थ हैं, इसी प्रकार "एकार" आदि सभी पन्द्रह अक्षरों के बीस-बीस संख्या में अर्थ कहे गए हैं । उन सभी कहे गये नामार्थों में प्रसिद्ध कोष, व्याकरणादि रीति से शक्ति असम्भव है, अतः नामों के ही बल से कल्पना करना अर्थापत्ति का ही

बल है । नामैकदेश में नामग्रहण करना भी प्रचलित है, यथा- "भीम शब्द से (नामैकदेश से) भीमसेन" यह समझा जाता है । "सत्या" नामैकदेश से सत्यभामा, या भामा शब्द से सत्यभामा आदि उदाहरण प्रसिद्ध है । पञ्चदशी मूलविद्या में पन्द्रह वर्णों में ककारादि के कहे गये नामों के भी अनन्तनाम होंगे । इस आधार पर "ककार" के भी अनन्त होंगे, ऐसी स्थिति में ये जो बीस नाम कहे गये हैं, चिन्तन सौकर्यादि की दृष्टि से इतने ही अर्थ (बीस-बीस अर्थ) नियमित हैं अन्य नहीं असीमित होने के कारण । और उन नामों में प्रत्येक अक्षर में प्रथम नाम के नामार्थ और शब्दार्थ रूप अर्थों से पौनरुक्त्य (पुनरुक्ति होने से) होने से केवल २० में से उन्नीस नाम ही अर्थ रूप में विवक्षित होंगे । इस प्रकार नामैकदेशार्थ भी उन्नीस प्रकार का ही होगा ।।४६।।

४७ गद्यखण्ड- मूलम् -: यथा -: शाक्तार्थो द्विविधः । - अवयवार्थः, शक्तिसमूहार्थश्चेति तत्र अवयवार्थो नाम देव्या अवयवानां वर्णनम् । विद्यायां वाक्कूटेन किरीटमारभ्य कण्ठाधः, पर्यन्तविग्रहः प्रतिपाद्यः, कामराजकूटेन कट्यधः पादाग्रान्तो देहः प्रतिपाद्यः । तत एव वाच्यवाचकयोरभेदविवक्षयोक्तं सहस्त्रनामसु श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजा, कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभाग- धारिणी मूलमन्त्रात्मिका, मूलकूटत्रय कलेवरा "इति" ।।४७।।

अर्थ -: शाक्तार्थ का विवेचन इस प्रकार है - यथा -: शाक्तार्थ दो प्रकार का है - १ अवयवार्थ, २ शक्तिसमूहार्थ । इन दो प्रकारों में प्रथम अवयवार्थ में देवी के अवयवों का वर्णन । पञ्चदशी मूलविद्या में - प्रथम वाक्कूट (वाग्भवकूट- क ए ई ल ह्रीम्) से किरीट से लेकर कण्ठ पर्यन्त श्री विग्रह प्रतिपादनीय है । कामराजकूट से (हादिकूट - ह स क ह ल ह्रीम्), कण्ठ से नीचे से लेकर कटिपर्यन्त प्रतिपादनीय है । शक्तिकूट से (सादिकूट - सकलह्रीम्) कटि से नीचे पादाग्रपर्यन्त भाग

देह प्रतिपादनीय है। इसीलिये वाच्य (भगवती का सावयव श्री विग्रह), और वाचक पञ्चदशी मूलविद्या के कूटत्रय (कादि हादि सादिकूट) इन वाच्य और वाचक के अभेद की विवक्षा से श्रीललितासहस्रनामों के) में श्रीमद् वाग्भवकूटैकस्वरूपमुख पंकजा, (८५) श्रीमद्वाग्भवकूटमात्र-स्वरूपवाले मुखकमल वाली भगवती को प्रणाम है । कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी (८६) कंठ से कटि पर्यन्त मध्यकूट-स्वरूपवाली । शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी (८७) शक्तिकूट से अभिन्नता को प्राप्त कटि प्रदेश से पादाग्रपर्यन्तशोभित होने वाली ।। मूलमन्त्रात्मिका (८८) मूलमन्त्रात्मिका भगवती हैं । मूलकूटत्रयकलेवरा (८९) मूलमन्त्र के तीन कूट ही जिसके श्रीविग्रहरूप हैं ।।४७।।

यहाँ से शक्तिसमूहार्थ का विवेचन - यथा -:

४८ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा- वेधोभारत्यौ, माधवलक्ष्म्यौ, रुद्रपार्वत्यौ, रेफान्तवर्णषट्कस्यार्थाः । हृल्लेखायां हकार रेफयो-र्विभज्य गणनात् प्रथमकूटे कामकलायाः प्राक् षड्वर्णाः भवन्ति, ब्रह्माद्याः सकला अपि कामकला एव, न ततः पृथक् । तत एव ईकारेण सामानाधिकरण्यं प्रत्यक्षरं विद्यमानानां सुपांलोपः, वाक्ये संहितायां अविवक्षणात् ईकारेण सह न सन्धिः । प्रथमकूटस्य-यावानर्थः, - तावानेव द्वितीय तृतीयकूटयोरप्यर्थः । परं द्वितीय कूटमध्यस्थो हकारः- तृतीयकूटस्य प्रथमभागे सकारात्पूर्वं योजनीयः । तेन तयोरपि कूटयोः प्रातिस्विकंरेफान्ताः वर्णाः षडेव भवन्ति । ततश्चोक्तरीत्यैवार्थवर्णनम् । अत्र प्रत्यक्षरमेकैकत्र-शक्तिः - तेन शाक्तानांमक्षराणामर्थः शाक्तार्थः ।।

कादिविद्यायां ककारास्त्रयः हकारौ द्वौ, तेषां शिव एवार्थः। लकारास्त्रयः सकारौ द्वौ तेषां शक्तिरर्थः । अतएव कामबीजे ककारलकारयोर्योगः, पराप्रासादे हकारसकारयोर्योगः । शुद्धयोरचोः

द्वितीयतृतीययोरपि शक्तिरर्थः । हल्लेखायां उभयसामरस्यात्मकं परब्रह्मैवार्थः । तत्रत्य व्योमाग्नि तुरीयस्वरबिन्दुभिः क्रमेण प्रकाश विमर्श सामरस्यतादात्म्यापन्नब्रह्मैवार्थो बोध्यः । त्रिशत्यां तथैवोक्तम्-: यथा-: (- त्रि स्तो उ माहात्म्ये.) १० कत्रयं हृद्वयंञ्चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः । शक्त्यक्षराणिशेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः ।।४८।।

अर्थ -: शक्तिसमूहार्थ का विवेचन - यथा-: पञ्चदशी मूलविद्या के प्रथमकूट (वाग्भवकूट- क[१] ए[२] ई[३] ल[४] ह[५] र्[६] ई म्) में केवल रेफ तक छह वर्ण हैं, इसमें इन छह वर्णों को पृथक् गिना गया है- इन छह वर्णों के अर्थ - "क" कार और "ए" का अर्थ- ब्रह्मा और भारती , "ईकार का और "ल" का अर्थ विष्णु और लक्ष्मी, "ह" कार और "र्" कार का अर्थ रुद्र और पार्वती ये शक्ति शक्तिमान् हैं । यहाँ हल्लेखा में ह्कार और रेफ का विभाजन करके गिनती करने से प्रथम कूट में "कामकला (ईं के पूर्व छह वर्ण होते हैं, ब्रह्माभारती, माधवलक्ष्मी और रुद्रपार्वती पर ये सभी कामकला ही हैं, उससे पृथक् नहीं सभी कामकला के ही रूप हैं इन सभी का कामकला से ही अर्थात् ई "कार से सामानाधिकरण्य है, इनमें सभी वर्णों में समान विभक्ति रूप सामानाधिकरण्य है अतः प्रत्येक वर्ण के आगे "सु" विभक्ति विद्यमान थी; उस "सु" विभक्ति का लोप है, वाक्य में संहिता (संधि) अविवक्षित होती है **संहितैकपदे नित्या नित्याधातूपसर्गयोः। नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ।। (सि.कौ.भ्वा.प्रकरणे)** इसकारण ईकार के साथ सन्धि नहीं है। प्रथमकूट का जितना अर्थ है, उतना ही अर्थ द्वितीय कूट (हादिकूट) का और तृतीयकूट (सादिकूट) का भी है। परन्तु द्वितीय कूट के मध्य में स्थित हकार (ह स क ह ल ह्रीम्), तृतीयकूट के (सादिकूट - सकल ह्रीम्) के प्रथमभाग में स्थित "ककार" के पूर्व में योजनीय है तब - "ह स" यह रूप बनेगा इससे दोनों कूटों (द्वितीय और तृतीय) में अपने-अपने निजी रूप में रेफान्त छह ही वर्ण

होंगे । जैसे- द्वितीय कूट का मध्यस्थित हकार तृतीय कूट के सकार के आदि में जोड़ दिया तो ये दोनों हकार सजातीय हैं, द्वितीय वर्ण माना गया है, द्वितीय कूट में ''मध्यस्थित हकार निकालने से- द्वितीय का रूप- ह, स, क, ल, ह, र, (ईं) इसी प्रकार तृतीय कूट में सके पूर्व ''ह'' (द्वितीयकूट का मध्यस्थित हकार) जोड़ने से रूप बना- ह स क ल ह, र (ईं) इसके अनन्तर पूर्व में कही गई रीति से ही अर्थ का वर्णन होगा । यहाँ इन कूटों में प्रत्येक अक्षर में एक-एक शक्ति है, इसलिए यह निष्कर्ष है, कि शक्तानामर्थः अर्थात् शक्तानां अक्षराणाम् = अर्थ शाक्तार्थ ।-

साथ ही ''सामरस्यार्थ'' विवेचन - यथा - कादि पञ्चदशी विद्या में तीन ककार हैं, ''हकार'' दो हैं, उन पाँचों वर्णों का ''शिव'' ही अर्थ है इसी प्रकार महामन्त्र में तीन लकार और दो सकार हैं उनका अर्थ ''शक्ति है'' इसलिये ही कामबीज में (क्लीं) ककार और लकार का योग है और परा प्रासाद बीज में (ह्सौः) हकार और सकार का योग है । शुद्ध अचों ए और ई द्वितीय और तृतीय अचों का भी शक्ति अर्थ है, और लज्जा बीज (ह्रीम्) मायाबीज का शिवशक्ति का सामरस्यात्मक परब्रह्म ही अर्थ है । निष्कर्षतः शिव, शक्ति, ई (चतुर्थ स्वर) स्वर और बिन्दुओं के साथ क्रम से उभय विधब्रह्म - अर्थात् प्रकाश विमर्श और दोनों (शिवशक्ति) के सामरस्य होने से ब्रह्म ही प्रत्येक कूट का अर्थ जानना चाहिये '। -

त्रि शती स्तोत्र में (१० वाँ) श्लोक में -

व त्रयं हद्वयञ्चैव शैवोभागः प्रकीर्तितः ।

श क्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः ।।

अ र्थात् मूलविद्या मंत्र (पञ्चदशी में जो तीन ककार हैं और दो हकार ये शैव भाग हैं तथा मन्त्र में शेष अक्षर शक्त्यक्षर (ए ई ल, स ल, स त) हैं और ह्रींकार - शिवशक्ति सामरस्यात्मक है ।।४८।।

:९ गद्यखण्ड - मूलम् - यथा-: समस्तार्थः - कन्यते प्रका यते ऽनेनेति ''कं'' प्रकाशकत्वं ककारस्यार्थः । औणादिक

''ड'' प्रत्ययेन निष्पन्नम् ।

''ईयते'' अधीयतेऽनेनेति ''ए'' बुद्धिः । ''इङ्'' अध्ययने इति धातुरधिपूर्वोऽपि । प्रकृत आर्षत्वात् तद्विमोकः, । क्विपि कृते, कित्वेऽपि गुणः अध्ययन करणं बुद्धिः । कर्मधारयेण प्रकाशमाना बुद्धिरिति तयोरर्थः । ''ईयते'' व्याप्नोतीति ई । सर्वत्रासन्धिरार्षः । तस्य लहरी आधिक्यम् । हकारोत्तर वर्तिनोऽकारस्य लोपे लह्री । माङ्माने इति धातोः क्विपि, णिचि, टिलोपे ''म्'' इति रूपम्। तथा च तन्निर्माणम् मकारार्थः । प्रकाशमान सूक्ष्ममतिव्यापनाधिक्यनिर्माणं प्रथमकूटार्थः ।।- हन्यतेऽनेनेति हं शौर्यम् । सीयते सूयते इति वा सं द्रव्यं, स्यतेः सुनोतेर्वा । काम्यते इति कं, स्त्रक्चन्दनवनितादिकम् । हानं हः । हसकानां हः - ओहाङ्गतौ । तस्य लहर्याधिक्यम् । ईयते इति ई कीर्तिः लह्री इत्यनेन प्रश्लिष्टः । तन्निर्मातीति म् । तथा च - शौर्यधन स्त्रकचन्दनवनितादि- प्राप्त्यतिशयस्य कीर्तेश्च निर्माणमिति द्वितीयकूटार्थः कूटद्वयस्य द्वन्द्वः । एतयोः निर्माणे सम्यक् कलयतीति सकला । समिति मकारलोपः । हरति निखिलं जगदिति ह सर्वजगत् संहर्त्री । ई दीप्तौ इति दीप्त्यर्थक ईकारश्च तत्र प्रश्लिष्टः। सृष्टिस्थितिदीप्तिकर्तृत्वं तदर्थः । हकारेकारयोः कर्मधारये यणि ह्रीः, उपलक्षणविधया पञ्चकृत्यकर्त्रीत्यर्थः । अथवा हरति सर्वं विषयीकरोतीति ह । क्विप् आगम स्थानित्वात् - न तुक् । तच्च दहराकाशम् । तत्र ईयते प्रकाशते इति ह्री निर्माणार्थकः मकारः। तेन ह्रीकार पदान्तस्य कर्मधारयः । मकारस्यानुस्वारत्वम् । चरमकूटे त्वनुस्वार एव विशेष्यः । ततश्च प्रकाशमानसूक्ष्मबुद्धिव्यापनशौर्य- धनस्त्रीयशसामाधिक्यकर्तृ निखिल जगत्सृष्ट्यादि कर्तृ, दहराकाश- वर्ति, नादरूपं चिद्रूपं ब्रह्मेति समस्तमन्त्रार्थः सिद्धः ।।४९।।

अर्थ -: समस्तार्थ का विवेचन -: " क ए ई ल ह्रीम् प्रथमकूट का विवेचन -यथा-: कन्यते प्रकाश्यते अनेन इति इस व्युत्पत्ति से "कं" का अर्थ प्रकाशक यह अर्थ हुआ । "क" की शब्दसिद्धि बाहुलक नियम से नलोप और उणादि प्रत्यय "ड" हुआ । ईयते अधीयते = अनेनेति "ए" बुद्धि । इङ् अध्ययने इस धातु में "अधि" उपसर्ग भी लगता है परन्तु प्रस्तुत प्रयोग "आर्ष" है । इसलिये उपसर्ग का त्याग हुआ है धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ अनुबंधलोप, किन्तु कित् होने पर भी गुणादेश होकर "ए" व्युत्पन्न हुआ जिसका अर्थ हुआ- अध्ययन करना रूप बुद्धि "क और ए" दोनों में कर्मधारय समास है । (क चासौ ए च इति क ए) - इन दोनों में आर्षत्वात् सन्धि नहीं हुई । इन दोनों का अर्थ कर्मधारय समास के कारण यह हुआ प्रकाशमाना बुद्धि । ई की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- " ईयते व्याप्नोतीति ई " सभी स्थलों में सन्धि का अभाव आर्ष प्रयोग होने के कारण हैं ।

क ए ई" । तस्य लहरी- अर्थात् अधिकता, । लहरी "इसमें हकार के उत्तरवर्ती अकार का लोप होने पर "लह्री" यह स्थित हुआ । माङ्माने इति इस धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ, णिच् प्रत्यय हुआ टि का लोप हुआ "म्" यह रूप सिद्ध हुआ (व्याकरण सूत्र- प्रातिपादिकाद्धात्वर्थे बहुल मिष्टवच्च" इस सूत्र से णिच् , "णेरनिटि" सूत्र से टि लोप) । तथा च उस सूक्ष्म मति की व्यापकता का निर्माण जिससे हो वह "म" - । इस प्रकार अर्थ हुआ । प्रकाशमान सूक्ष्म बुद्धि की अधिकता के व्यापन का निर्माण "प्रथम - कादि कूट का अर्थ है (क ए ई ल ह्रीं)

द्वितीयकूट का अर्थ विवेचित करते हैं - (ह स क ह ल ह्रीं) -:

ह "की व्युत्पत्ति यथा-: हन्यतेऽनेनेति हं = शौर्यम् । (हन हिंसागत्योः" इस धातु से "अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलिक्ङिति" इस सूत्र से न लोप) । स "की व्युत्पत्ति यथा - सीयते या सूयते वा सं द्रव्यम् -द्रव्य अर्थ हुआ स्यतेः सुनोतेर्वा धातु से भी । (वैयाकरण सूत्र - षोऽन्तकर्मणि" अथवा षूञ् "अभिषवे" इससे

करणार्थक "ड" प्रत्यय से- सम् "यह रूप सिद्ध हुआ (हस- यह व्युत्पन्न हुआ) "क" की व्युत्पत्ति यथा-: "काम्यते "इति कम् " इसका अर्थ यह है - स्रक् , चन्दन, वनिता आदि पदार्थ । (यहाँ ह, स, क, द्वन्द्व समास से हसक, -) ह "यह अग्रिम वर्ण इसकी व्युत्पत्ति "हानं हः" हसकानां हः (षष्ठी तत्पुरुष समास द्वारा प्राप्ति - अर्थ - "ओहाङ्गतौ इस धातु से ह" रूप बना हसकह तस्य, लहर्याआधिक्यम् - अर्थात् हसक हानां लहरी = यह अन्वय (सम्बन्ध) ईयते "इति ई कीर्तिः (इसमें द्वन्द्व समास हसकहही च ई च से संयुक्त होगा - तन्निर्मातीति- म् । रूप सिद्ध हुआ हसकहलह्रीम् ।। अर्थात् - शौर्य, धन, स्त्री, चन्दनादि की प्राप्ति और अतिशय मात्रा में कीर्ति का निर्माण - इन सभी की प्राप्ति "द्वितीय कूट का - (हसकहलह्रीम् " का अर्थ है ।। (इसका संक्षिप्त अर्थ- अर्थात् - सूक्ष्ममति (ऋतम्भराप्रज्ञा) की व्याप्ति की अधिकता- यह वाग्भवकूट का अर्थ है । शौर्य (शूरता, पराक्रम), धन, (अर्थ), स्त्री- (सुवासिनी, सुलक्षणामहिला) का सान्निध्य, यश की पर्याप्ति यह कामराजकूट (द्वितीयकूट) का अर्थ-

वाग्भवकूटस्यार्थः सूक्ष्ममतिव्यापनाधिक्यम् ।।
शौर्यधनस्त्रीयशसामाधिक्यं कामराजार्थः ।।

(वरिवस्या रहस्य में पृ.३६४ में-२/१२७)

तृतीयकूट का अर्थ इस प्रकार है -: (स क ल ह्रीं)

प्रथमकूट (कादि) में और द्वितीयकूट में (हादि) द्वन्द्व समास है- यथा - क ए ई ल ह्रीं च, हसकहलह्रीं च इति क ए ई ल ह्रीं हसकहलह्रीम् इन दोनों कूटों के निर्माण में सम्यक्कलयति इति- सम्यक्सम्बन्धकरे वह सकला - सम में मकार का लोप - स क ल" । ह्रीम् = में ह" अर्थात् हरति निखिलं जगत् - ह = सर्वजगत् संहर्त्री । ई "दीप्तौ इति इस दीप्त्यर्थक ईकार वहाँ प्रश्लिष्ट है इसका अर्थ है - सृष्टिस्थितिदीप्ति कर्तृत्व हकार और ईकार दोनों में कर्मधारय समास तथा ह में यण् ह और ई = ह्रीः (यहाँ सृष्टिस्थितकर्मी इस अर्थ में उपलक्षण है अतः

सृष्टिस्थिति आदि पंचकृत्यों की कर्त्री यह अभिप्राय है । अथवा हरति अर्थात् सभी पदार्थों का विषयीकरण जिस से हो वह "हृ" हृ में क्विप् का आगम हआ है, आगम मित्रवत् है अनित्य होता है इस कारण तुक् नहीं होगा । इस "हृ" का अर्थ दहराकाश, इस दहराकाश में ईयते प्रकाशते - वह ह्री जिसमें निर्माणार्थक मकार है, उससे (मकार से) ह्रीकारपदान्त का कर्मधारय समास होगा उसमें जो मकार है वह अनुस्वार है यहाँ सर्वत्र मकार को अनुस्वार ही माना है । अन्तिम कूट में (सादि) तो अनुस्वार ही विशेष्य है बाकी पूर्व के सभी (मकार) विशेषण हैं । अतः प्रकाशमानसूक्ष्मबुद्धिव्यापन शौर्यधनस्त्रीयश का आधिक्य करने वाला अखिल जगत् की सृष्टिस्थिति संहारकर्ता दहराकाश में रहने वाला, नादरूप, चिद्रूप, ब्रह्म ही है यह मंत्र का अर्थ सिद्ध हुआ । यही समस्तार्थ है।।४९।।

तृतीय शक्तिकूट (स क ल ह्रीं) के अर्थ द्योतक श्लोक वरिवस्या ग्रन्थ के द्वितीयांश में पृ. ३६४ में इस प्रकार हैं -: यथा -:

एते सम्यक् कलयति सकला हरतेर्हकारःस्यात् ।
निखिल जगत्संहर्त्रीत्यर्थस्तस्यापिवर्णस्य ।। (२/१२८)
ईकारः प्रश्लिष्टः सृष्टिस्थितिरूपदीप्तिकर्त्रर्थः ।
यद्वा हृदि खेदहरे प्रकाशते तेन माता ह्रीः ।। (२/१२९)
सकलान्तेन पदेन ह्रीकारे कर्मधारयः कार्यः ।
तस्य विशेष्यो मः स्यान्नादार्थः संविदर्थो वा ।। (२/१३०)

५० गद्यखण्ड - मूलम् - यथा-: स्यतेरन्तकर्मवाचकत्वेऽप्यत्रोपभोगार्थकत्वम् । अध्ययनार्थकस्येङोअत्राधेर्धातुपूर्वं प्रयोगोऽसम्भवस्तद्विमोकः । अतः इटकिटकटीगतौ इत्यत्र केवलं "ई" एव प्रयुक्तः गत्यर्थकधातोः ज्ञानार्थ हरीत्यत्राकारलोपः । निर्माणार्थकस्य माङ्माने इत्यस्यानुस्वारत्वादिकम् । धातोर्बह्यर्थत्वात् बाहुलकत्वात् पृषोदरादित्वात् आकृतिगणत्वात् उणादि कल्पनात् छान्दसत्वात् सर्वमुपपादनीयम् । तदुक्तं

वरिवस्यारहस्ये'' धातोर्बह्वर्थत्वाद्बहुलग्रहणापृषोदरादित्वात् । आकृतिगणपाठेन स्वेच्छानुगुणादिकल्पनतः । ''छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकतावशादमुष्य मनोः सिद्धैः कथितेऽर्थेऽस्ति वैयाकरणानुशासनानुमतिः । इति अयमेवार्थः किञ्चिद्विस्तरेणान्यैराचार्यैरुक्तस्तथा हि -

कन्यन्ते प्रकाश्यन्ते शब्दार्थ जालानीति - अनेनेति ''क''। कनयतीतिवा ''क'' कन् दीप्तौ इति स्मरणादार्षत्वात् प्रगृह्यत्वेन प्रकृतिभावः ।। - ईयते स्मर्यते अधीयते वा सर्वा वेदशास्त्रादिकला अनेनेति ''ए'' इक्'' स्मरणे, इङ् अध्ययने इत्यस्मादौणादिके विचि वेरपृक्तस्येति व लोपे गुणे निपातत्वात् प्रगृह्यत्वेन प्रकृतिभावः। ''क च ए च-क ए । शब्दार्थजालावभासिनी वेदादिशास्त्राध्ययनस्मरणप्रयोजिका बुद्धिः । ईयते व्याप्नोतीति ई । इङ् गताविति क्विपि नियतत्वात् प्रकृतिभावः । व्यापिनीत्यर्थः । लहरीत्यस्यपरोक्षतया ''ल ह्रीं-''त्युक्तम् । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ''इति श्रुतेः (ऐतरेयोप. ३य. व तृती १४वां मंत्र) । सर्वप्रकाशकबुद्धिव्यापिनीलहरी ल ह्री त्याधिक्यमर्थः । मीयते इति माङ्माने शब्दे च इत्यस्मात् क्विपि परोक्षश्रुत्यालुप्ताकारत्वेन वा अनुस्वारत्वम् । तस्य निर्माणमर्थः । तथा च ''क ए ई ल ह्रीं'' शब्दार्थाविद्योतकवेदवेदादिशास्त्राध्ययनस्मरणप्रयोजक बुद्धि व्यापनाधिक्ययुक्ता स्वप्रकाशा संवित् । अनेन धर्मात्मकपुरुषार्थसाधनब्रह्मवर्चसा असमृद्धिनिवृत्तिसम्यग्बुद्धिनिर्मितिरुक्ता । एतेनैव वाक्प्रवृत्तिजालनिमित्तत्वात् - वाग्भव कूटत्वं ब्राह्मणवर्णोपास्य गायत्रीसारत्वञ्चोक्तम् । इष्टदेवताप्रकाशनात्मकत्वेन वाग्जालप्रवर्तकत्वादृग्वेदात्मकत्वम् ।।५०।।

अर्थ-: ''स्यति का अर्थ अन्तकर्म होने पर भी यहाँ (मन्त्र में)

उपभोगार्थकता विरुद्ध नहीं है "अध्ययनार्थक इङ् धातु (अध्ययने) अधि" उपसर्ग पूर्व प्रयोग सम्भव न होने से "इ" इटकिटकटी गतौ ।। में केवल ईकार ही प्रयुक्त हो । जितने भी गत्यर्थक धातु हैं, वे ज्ञानार्थक भी होते हैं । हरी "इसमें अकार का लोप होता है । निर्माणार्थक "माङ्" माने इसमें म्" को अनुस्वारत्व धातुओं के अर्थ विनिश्चयार्थ वैयाकरणों ने कुछ प्रकार शास्त्रों में निर्दिष्ट किए हैं - यथा - धातु अनेकार्थक होती हैं, बाहुलक पद्धति से शब्द सिद्धि होती है । (बाहुलक के लक्षण की कारिका भी- है-यथा- क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृतिः क्वचिद्विभाषा, क्वचिदन्यदेव । विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति)। इसी बाहुलक के आधार पर "ल ह्रीं" में अकार का लोप हुआ है। पृषोदरादित्व से भी शब्दार्थ नियुक्त होता है "वचन भी है" "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् " इति और आकृतिगण अर्थात् गणपाठ के अभाव में आकृतिगण स्वीकृत होता है उणादिकल्पना से भी, (उणादि प्रकरण में यह नियम चलता है "संज्ञासुधातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ") और छान्दसत्व होने से भी सभी सम्पन्न किये जाते हैं । "विधान है- "छन्दसिसर्वविधीनां वैकल्पिकत्वम् " अर्थात् वेद में सभी विधि विकल्प से ग्राह्य है । वरिवस्या रहस्य में यही बात कही गई है - यथा- धातोर्बह्वर्थत्वात् बहुलग्रहणात् पृषोदरादित्वात् । आकृतिगणपाठेन स्वेच्छानुगुणादि कल्पनतः "इति पुनश्च" छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकतावशादमुष्यमनोः । सिद्धैः कथितेऽर्थेऽस्मिन् वैयाकरणानुशासनानुमतिः ।। इस अनुशासन के विषय में वैयाकरणानुशासन भी मान्य होता है। अर्थात् "सिद्धों के द्वारा कहे गये अर्थों के विषय में व्याकरण के अनुशासन की अनुमति भी मान्य है । यही समस्तार्थ (मन्त्रका) अन्य आचार्यों के द्वारा कुछ विस्तार से कहा गया है - तथा हि = यथा -: समस्तार्थ पद की निरुक्ति यह है-" समस्त पदस्यार्थ इति, वा समस्ताः सकला अर्थाः पुरुषार्था यस्मिन्नितिवा, समस्त, संक्षिप्तोऽर्थ इति वा (भगवान लोपामुद्रापति कुम्भजऋषि

अगस्त्यजी ने भी "श्रीविद्यादीपिका" नाम पञ्चदशी के कूटत्रय की वैयाकरणनियमादि से निरुक्ति की है-) - विशेष -: कुम्भजप्रोक्त श्रीविद्यादीपिका का हिन्दी अनुवाद त्रिशतीस्तोत्रं के शां. भा. के परिशिष्ट भाग में देखा जा सकता है । (यह पुस्तक- श्रीशारदा पीठम् द्वारका) (जामनगर गुजरात से प्रकाशित है ।।)

वाग्भव कूट की शब्द निरुक्ति - यथा -(क ए ई ल ह्रीम्)

"क" "कन्यन्ते प्रकाश्यन्ते शब्दार्थजालानीति - अनेनेति "क" अर्थात् - जिसके द्वारा शब्दार्थजाल प्रकाशित किए जाते हैं वह वर्ण "क" है अथवा "कनयतीतिवा "क" , कन् दीप्तौ धातु का भी स्मरण अर्थ होता है यानि शब्दगत अर्थ की दीप्ति जिससे हो यह आर्षवर्ण है, प्रगृह्य संज्ञक होने से प्रकृतिभाव हो गया इसलिये केवल "क" है ।।

"ए" ईयते स्मर्यते अधीयते वा सर्वा वेदशास्त्रादिकला अनेनेति "ए" अर्थात् समस्त वेद शास्त्र आदि की कलाओं का स्मरण जिसके द्वारा किया जाता हो या अध्ययन किया जाता हो वह "ए"। इक स्मरणे अथवा "इङ् " अध्ययने इन धातुओं से उणादि प्रत्यय विहित हुआ विच्" अनुबन्धलोप अर्थात् "वकार" का लोप, गुण, निपात संज्ञक (निपात एकाजनाङ् सूत्र), तथा प्रगृह्यत्व होने (प्लुत प्रगृह्याअचि नित्यम्) नित्य प्रकृति भाव होने से "ए" द्वन्द्व समास से क च ए च- इति "क ए"। अर्थात् - शब्द और उनके गूढ़ अर्थजालों को प्रकाशित करने वाली वेदादिशास्त्रों के अध्ययन, स्मरणादि की प्रयोजिका बुद्धि ।।

"ई " "ईयते" व्याप्नोतीति ई अर्थात् जो व्यापक हो व्यापिनी हो वह "ई " "ईङ्" गतौ इस धातु से, क्विप् प्रत्यय सर्वापहारीलोप, नियत होने के कारण प्रकृति भाव, व्यापिनी यह अर्थ हुआ (सभी गत्यर्थक धातुज्ञानार्थक भी होते हैं ।।

ल "ह्री" लहरी इस पदका परोक्षरूप होने से "ल ह्री" यह प्रयोग किया है लहरी यह लौकिक प्रयोग है परन्तु "परोक्षप्रिया इव हि देवाः" (ऐतरेयोपनिषद् ३/१४) यह श्रुतिवाक्य है अर्थात् देवगण परोक्ष प्रिय ही

होते हैं यहाँ अर्थ निष्पन्न हुआ सर्वप्रकाशक बुद्धिव्यापनी लहरी अर्थात् "ल ह्रीं" उस व्यापक बुद्धि की पर्याप्तता अधिकता ।

"ह्री+म्" मीयते इति "माङ्माने शब्दे च इस धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ उसका सर्वापहारी लोप हुआ परोक्षश्रुति से मा में आकार का लोप होने से म् को अनुस्वार (मोऽनुस्वारः) अर्थात् उस व्यापकता रूपबुद्धि का निर्माण तथा च "क ए ई ल ह्रीम् " शब्दार्थों के अवद्योतकवेदादि शास्त्रों के अध्ययन, उनके स्मरण, (मनन, निदिध्यासन) की प्रयोजक बुद्धि की अतिशय व्यापकता युक्त स्वप्रकाशा अर्थात् जिसे अन्य प्रमाणों की आवश्यकता न हो तथा जो स्वयं ही प्रमाण हो ऐसी स्वप्रकाशा संवित् (वाग्भवकूट का तात्पर्यार्थ है । इसके द्वारा धर्मात्मक पुरुषार्थ के साधन ब्रह्मवर्चस् (गायत्री मन्त्र) के द्वारा "असमृद्धि को निवृत्त करने वाली सम्यक् बुद्धि की निर्मिति जिससे हो वह" यह अभिप्राय है । इसी के द्वारा ही वाक्प्रवृत्ति के समूह के निमित्त कारण होने से यह इस कूट को "वाग्भवकूट" कहा गया है ; जो ब्राह्मणवर्ग से उपासित सर्वस्वभूत गायत्री मन्त्र का साररूप है, यह संकेत है । और इष्ट देवता के प्रकाशनात्मक होने से वाग्जाल के प्रवर्तक होने से यह कूट बह्वृच् वेदत्व (ऋग्वेदात्मक) है ।।५०।।

– द्वितीयकूट(हादिकूट =(ह स क ह ल ह्रीं)

५१ गद्यखण्ड – मूलम् – यथा –: हन्यते तापत्रयमनेनेति "हः" । तस्या च शत्रुरोगादि लौकिकस्य दुष्कृतजन्यस्यामुष्मिकस्य च तापस्य निवृत्तिरुक्ता । सीयन्ते उपभुज्यन्ते सर्वधन कनक वाहनभूम्यादिसम्पत्प्रचया अनेनेति "सः" । स्यतेः सुनोतेर्वा – अन् प्रत्यये सकल राज परिच्छदजालमुच्यते । काम्यन्ते स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगा अनेनेति "क" ऐहिकामुष्मिक सकल विषय भोग उक्तः । हीयते प्राप्यते इति "हः" । ओहाङ् गतावित्यस्य रूपम् । हसानां "हः" । ह स क हः "ताप-निवृत्त्यर्थकामभोगानां प्राप्तिः । तस्या लहरी आधिक्यम् ।

ईयते प्रकाश्यते कीर्तिजालं दिगन्तेषु अनेनेति ईः । गुणसन्ततिः । ई '' दीप्तावित्यस्य रूपम् । ''हस कहल ह्रीश्च ईश्च-हसकहलह्य: तासां निर्मात्री स्वप्रकाशा संवित् । धातूनामनेकार्थत्वात् । निर्माणार्थकान्मा धातोरनुस्वारस्य निष्पत्तिः । अनेनार्थकामपुरुषार्थनिर्मितिरुच्यते तस्मादेवास्य कामराजकूटत्वं क्षत्रियवर्णोपास्यमानत्रिष्टुप्छन्दःसारत्वम् स्वकीयाभीष्ट साधककर्मजातविधायकत्वाद्यजुर्वेदात्मकत्वम् ।।५१।।

अर्थ-: यथा द्वितीयकूट हादिकूट (ह स क ह ल ह्रीम्) का विवेचन -: ''ह'' हन्यते तापत्रयमनेनेति हः - अर्थात् जिसके द्वारा तीन ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) नष्ट होते हैं वह वर्ण ''ह'' है । तथा इसके द्वारा शत्रुरोगादिलौकिक ताप एवं दुष्कृत कर्मों के कर्मविपाकजन्य पारलौकिकताप की समाप्ति कही गई है ।।

''स'' सीयन्ते उपभुज्यन्ते सर्वधन० अर्थात् जिसके द्वारा समस्त धन,कनक,वाहन,भूमि आदि समस्त सम्पत्तियों के समूह भोगे जाते हैं- वह वर्ण ''स'' है । स्यति, सुनोति से ''अन'' प्रत्यय हुआ अर्थात् समस्तराजपरिजनआश्रितमण्डली का या छत्रचामरादि वाचक है । काम्यन्ते स्त्रक्-चन्दनादिवनितादिविषयभोगा-अनेनेति ''क'' - जिसके द्वारा सुगन्धित सुलक्षणा माला चन्दन, स्त्री (सुलक्षणा सुवासिनी-भगवतीस्वरूपा का सौमनस्यरूप भोग = अर्थात् अनुभव) आदि विषयभोग प्राप्त होते हैं । इससे इहलोक और परलोक के समस्त भोग प्राप्त होते हैं यह कहा गया है ''क'' है ।। ''ह'' हीयते प्राप्यते - इति हः अर्थात् जिससे प्राप्ति हो वह वर्ण ''ह'' है । इसकी धातु है ''ओहाङ्गतौ '' इसका अर्थ है गति । ''हसकानां हः- ''हसकहः'' इसका अर्थ हुआ तापों (तीनों ताप) की निवृत्ति के लिये कामभोगों की प्राप्ति होती है जिससे, उस प्राप्ति की लहरी'' अर्थात् अधिकता हो पर्याप्ति हो ।। रूप बना ''हसकह- लह्र्'' - ।।

'' ह्रीं में ''ई '' ईयते प्रकाश्यते कीर्तिजालम् - अर्थात् - ईयते याने

कीर्ति का जाल (विस्तार) दिग्दिगन्तों में जिसके द्वारा प्रकाशित हो याने अभिव्यक्त हो (अभिप्राय यह है कि गुणों की परम्परा प्रकाशित हो जिससे । यहाँ "ई" की निरुक्ति "ई" दीप्तौ इससे निष्पन्न यह रूप है यहाँ द्वन्द्व समास इस प्रकार होगा - "हसकहल ह्री श च -ई श च" इति - हसकहलह्र्यः । इन सभी का निर्माण करने वाली- संवित् (यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है) धातुओं के अनेकार्थ होते हैं यह कारण है ।।

"ह्री- म् - "म" वर्ण की निष्पत्ति इस प्रकार है- निर्माणार्थक "मा" धातु से म के स्थान में अनुस्वार आदेश हुआ म =°) रूप सम्मिलित बना "ह्रीं" (इससे काम पुरुषार्थ का निर्माण होता है यह कहा गया है । इस कारण ही इसे कामराज कूटत्व - अर्थात् कामराज कूट का संकेत- क्षत्रिय वर्ण का उपास्य त्रिष्टुप् (वैदिक छन्द) का सार रूप है । अभीष्टफल (इहलोक और परलोक के सुखद फल के सिद्ध करने वाले कर्मसमूह के विधायक और स्वरूप के सचेतक होने से यह कर्मप्रधान प्रतिपादक यजुर्वेदात्मक है ।।५१।।

५२ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा-: "सकल ह्री" = सकलाभिरवयवैः शिवादितत्त्वैः- चतुष्षष्टिकलाभिर्वा सहिता सकला। सम्यक्कलयतीतिवासकला । हरतीति ह्रीः संहृतिशक्तिः। हृञ् हरणे "धातोः ई प्रत्यये बाहुल्याद्गुणाभावेन यणादेशः । ईयते प्रकाश्यते सर्वं जगत् अनयेति ई" सृष्टिशक्तिः । इन्दति सर्वेषां नियन्तृत्वे वर्तते इति "इः" स्थितिशक्ति । "इदि" परमैश्वर्यै इत्यस्यस्मात्क्विपि व्यञ्जनलोपे रूपसिद्धिः । ह्रीश्च, ईश्च, इश्च ह्रीः-सवर्णदीर्घः । संहृति सृष्टिस्थिति शक्तिः । अथवा - हरति विहरति इति ह्रीः । धातूनामनेकार्थत्वात् - हरतेर्विहरणार्थात् इन् प्रत्यये ह्रीः । यद्वा - "हृ" इति क्विबन्तः लुप्तसकारशब्दः प्रपञ्चसंहृतिवाचकः । ई प्रकाशः आत्मैक्यगमनम् । ह्री - सकलप्रपञ्चदेहेन्द्रियादिकं द्रवीकृत्य प्रकाशरूपैक्यगमकमित्यर्थः ।।५२।।

अर्थ -: सकलह्री - समस्त कलाओं के सहित अवयव शिवादि अवनिपर्यन्त तत्त्वों के सहित अथवा चौंसठ कलाओं के सहित- सकला। अथवा - सम्यक्रूप से कलयति - अर्थात् - सम्यक्रूप से जो अवबोधक होती है वह सकला, जो हरण करती है- वह ह्रीः" संहारशक्ति। ह्री- में "हृञ् " हरणे धातु से इ प्रत्यय हुआ बाहुल्य से गुणाभाव होने से यणादेश हुआ - हृ "ऋ" के स्थान र् यण् हृ + ई इति ह्री । ईयते अर्थात् सम्पूर्ण जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित होता है वह "ई" सृष्टिशक्ति सभी की नियन्त्रक होने से जो वर्तमान हो वह "ई " स्थिति शक्ति । विग्रह यह होगा - ह्री + ई + इ । इ में "इदि" परमैश्वर्य अर्थ में क्विप् व्यञ्जन का लोप - इ" रूप सिद्धि - ह्रीश्च + ईश्च + इश्च = ह्रीः सवर्णदीर्घादेश अर्थात् - संहार सृष्टि और स्थिति शक्तिरूपा । अथवा - हरति = विहरति = जो विहरण करे वह विहरणरूपाशक्ति - ह्रीः धातुओं के अनेक अर्थ होने से हृञ् हरणे "धातु का विहरण अर्थ अर्थात् विहार करना इस अर्थ में धातु से इन् प्रत्यय हुआ फलतःह्री हुआ । अथवा - "हृ" यह धातु क्विप् प्रत्ययान्त सकार का लोप हुआ अर्थ यह वर्ण प्रपञ्च और संहार का वाचक है । ई = प्रकाशः अर्थात् जीव ब्रह्म में या आत्मा ब्रह्म (परब्रह्म) में ऐक्य का ज्ञान होना । ह्री" सकल प्रपञ्चरूप देह और इन्द्रियादिकों को द्रवीभूत करके प्रकाशरूपऐक्यज्ञान का बोध कराने वाला है ।।५२।।

५३ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा -: "ई " इत्यनेन हृत्पुण्डरी-कदहराकाशस्थदीपशिखामध्ये स्थितो बोधात्मकप्रकाश-स्वरूपपरमात्मैव विवक्षितः । तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः"। "सकला च सा ह्री च सकलह्रीं " । इष्यते अत्यन्ताभीष्टत्वेन विरिञ्च्यादिचेतनवर्गैरिति "ई "। निरतिशया-नन्दरूपाचितिः । व्यञ्जनलोपादिभिः सिद्धिः । तस्य प्रमितिरनुस्वार-रूपेण लुप्ताकारेण मकारेण माधातुनिष्पन्नेन बोध्यते, तथा च

स्वप्रकाशनिरतिशयानन्दस्वरूपब्रह्मात्मसाक्षात्कारजननीत्यर्थः । लक्षणया स्वप्रकाशपरमानन्दरूपिणीत्यपि । सकल ह्री - शिवादि-सर्वतत्त्वात्मिकाभिः कलाभिः चतुःषष्टिकलाभिश्च सहिता सृष्टिस्थितिसंहृतिकारिणी सर्वनियामिका सर्वेश्वरी निरतिशया-नन्दरूपिणी राजराजेश्वरी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी त्रिपुराम्बा विवक्षिता। अथवा - ह्री च तत् ई च ह्रीं'' । ''सकलञ्च तत् ह्रीञ्च सकल ह्रीं'' सकलहृदाकाशवर्तिदीपशिखान्तर्गतनिरतिशयानन्दानुभव-प्रकाशिकानादात्मिकाचिच्छक्तिः । अथवा ''म् '' इति नादानुकारि अव्ययम् । अनेन नादात्मक शुद्धचैतन्यरूपता उच्यते । अनेन मोक्षसाधननादलययोगानन्दानुभव उक्तः । तस्मादेव शक्ति-कूटत्वम् । चित्तनिरोधप्रधानत्वं वैश्योपास्य जगतीच्छन्दःसारत्वं च । सामवेदस्यगान प्रधानत्वेन नादाविलीनचित्तत्वात् योगस्य सामवेदात्मकत्वम् । ''मन्त्रार्थः - क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीञ्च - सम्यक्कलयतीति क ए ई ल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं''। सर्वस्य मन्त्रस्यायमर्थः- ''शब्दार्थप्रकाशकवेदादिशास्त्राध्ययन-स्मरणप्रयोजकबुद्धिव्यापनलहरीयुक्त्या स्वप्रकाशसंविदा अनिष्ट-निवारणभोगभोग्यादिप्राप्त्याधिक्यकीर्तिजाल प्रयोगकगुणसन्तति-रचयित्री सर्वतत्त्वसर्वकलाधिष्ठात्री विश्वोत्पत्तिस्थिति संहृति जनक-सर्वैश्वर्योपेत निरतिशयानन्दानुभवप्रकाशिका निरतिशयानन्दा-त्मकदहराकाशस्थ परमात्मस्वरूपिणी स्वप्रकाशा चिच्छक्तिः।।५३।।

अर्थ -: ''ई '' इस वर्ण के द्वारा- हृदय कमल के सूक्ष्महृदय-वर्तिआकाश में स्थितदीपशिखा के मध्य में स्थित बोधात्मक अर्थात् ज्ञानात्मक प्रकाशस्वरूप परमात्मा ही कहा गया है, कहा भी जाता है । ''तस्याः शिखायाः मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः'' याने उस हृदयस्थआकाश में स्थित ज्ञान प्रकाशिका दीपशिखा के मध्य में परमात्मा (साक्षी) व्यवस्थित है ; विग्रह इस प्रकार सिद्ध हुआ - सकला च सा ह्री च =

सकल ह्री इति। "ई" की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी 'इष् इच्छायाम्' धातु से इष्यते अर्थात् ब्रह्मा आदि जगत् नियन्त्रक विशिष्ट देवगण प्रमुखों से अत्यन्त अभीष्टरूप में अभिलषित जो हो वह "ई" वर्णरूप शक्ति है। "ई" अर्थात् निरतिशय- आनन्दरूप चिति = ज्ञानानुभूति। इष् - में व्यञ्जन (अनुबन्ध) लोपादि से पद्धति से "ई" शब्द की सिद्धि है (इष्युशिभ्यां क्विप् , व्यञ्जनलोपश्चेति क्विप् सर्वापहारीलोप) उस निरतिशयानन्दरूपचिति का यथार्थानुभव अनुस्वार रूप से निष्पन्न मकार से होता है, मकार की निष्पन्नता "मा" धातु से आकार का लोप करने से होती है। और तब-स्वप्रकाशनिरतिशय आनन्दस्वरूपब्रह्मात्मसाक्षात्कार की जननी भगवती हैं, यह अर्थ होता है। लक्षणा द्वारा भी यह अर्थ निष्पन्न हो सकता है। यथा-अर्थात् वह भगवती स्वप्रकाशस्वरूप-परमानन्दरूपिणी है। "सकल ह्रीं" इससे शिवाद्यवनिपर्यन्तसर्वतत्त्व-रूपकलाओं सहित और चौंसठ कलाओं के सहित सृष्टिस्थितिसंहारकरने वाली सभी की नियामिका सर्वेश्वरी निरतिशय आनन्दरूपिणी राजराजेश्वरी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी त्रिपुराम्बा का विवेचन किया गया है। अथवा - "ह्री च त त् ई च = ह्रीं", सकलञ्च तत् ह्रीञ्च = सकलह्रीं"- इसका अर्थ हुआ कि- सम्पूर्ण सकल हृदयाकाश में उद्दीप्त दीपशिखा के अन्तर्गत निरतिशय आनन्द के अनुभव की प्रकाशिका नादात्मिकाचित्शक्ति। अथवा- "म्" यह नाद का अनुरूपी अव्यय है। इसके ("म्") द्वारा नादात्मक शुद्धचैतन्यरूपता भगवती हैं, यह कहा जाता है। इससे मोक्षपुरुषार्थ के साधनादलयके योग से आनन्द का अनुभव होता है, यह कहा गया है इसी कारण यह सादिकूट (सकलह्रीं) शक्तिकूट कहा जाता है। यह चित्त के निरोध (योग का साधन चित्तवृत्तिनिरोध-) योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः) प्रधान कारण कहा गया है, और वैश्यों के द्वारा उपासना करने योग्य जगती छन्द का यह साररूप है। यह कूट (सादिकूट) सामवेदात्मक है तथा यह चित्तवृत्ति के निरोध का प्रधान साधन है, सामवेदात्मक इसलिये है, कि सामवेद नाद और लय प्रधान है। योग में

चित्तवृत्ति का निरोध प्रमुख है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः यो. दर्शन) इसलिये यह योगसाधक होने से सामवेदात्मक है ।।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है- "कएईलह्रीं हसकहलह्रीञ्च सम्यक् कलयतीति - कएईलह्रींहसकहलह्रींसकलह्रीम्" इति ।।

सम्पूर्णमन्त्र का इस प्रकार अर्थ निष्पन्न हुआ - यथा- शब्द और अर्थ के प्रकाशक वेदवेदाङ्ग समस्त शाखाओं सहित शास्त्रों के अध्ययन और श्रुत तथा पठित अर्थ के स्मरण की प्रयोजिका बुद्धि की व्यापकता की अधिकता या पर्याप्ति वाली स्वप्रकाश की संविदा अर्थात् अपरोक्षानुभूतिकारिका, अनिष्ट निवारिका, भोग और भोग्य पदार्थों की प्राप्ति की प्रचुरता वाली, कीर्ति के विस्तारके प्रयोजकगुणों की परम्परा की रचना करने वाली, समस्ततत्त्व (३६ तत्त्व) समस्त कलाओं की अधिष्ठात्री, समस्त विश्वों की उत्पत्ति पालन और संहार की विधायिका, समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न निरतिशय आनन्द अनुभवों को प्रकाशित करने वाली, और निरतिशय आनन्दात्मकहृदयागुहास्थितमहाकाश में स्थित साक्षी परमात्मास्वरूपिणी स्वप्रकाशरूपा वह चिद्शक्ति है; जो पराभट्टारिकामहात्रिपुरसुन्दरी (सुन्दरी शब्द आत्मा का पर्याय है) भगवती श्रीमाता ललिताम्बा पञ्चदशीमूलविद्याधिष्ठात्री है ।।५३।।

श्रीपादुकां पूजयामि - नमः यहाँ तक पञ्चदशी मूलमन्त्र का विवेचन पूर्ण हुआ ।।५३।।

षोडशी मन्त्र की व्याख्या तत्र मूलम् - यथा-

५४ गद्यखण्ड- मूलम् - यथा-: श्रयति-शक्तिरूपेण शिवमिति श्रीः । श्रीयते सर्वैर्गुणै-रितिवा । श्रीयते सेव्यते परशिवेनापि या सा श्रीः । तां मातिबोधयतीति । ह्रीं इति माया बीजं हृल्लेखाया बोधकम् । क्लीं इति कामबीजं सर्वार्थ प्रापकम्। ऐं इति वाग्भवबीजं सर्वार्थावद्यो-तकम् । सौरिति ब्रह्मविद्या स्वरूपिण्याः पराया बोधकम् । प्रणवः ॐ वाच्यार्थलक्ष्यार्थभेदेन

सगुणनिर्गुणवेदान्तवेद्यपरतत्त्व बोधकम् । पुनश्च ह्रीं इति सर्वशक्तिसर्वाधिष्ठानब्रह्मबोधकम् । श्रीमिति सर्वैश्वर्यसर्वमाधुर्य तदधिष्ठान बोधकम् । प्रतिलोमक्रमेणोमान्येव बीजानि पञ्चदश्याः परस्तादादिसान्तिबीजैः सहितं कूटत्रयं षोडशी सम्पद्यते ।। सगुणार्थश्च कः प्रजापतिः, सकारोविष्णुः । तदुत्तरवर्तिनमकारं प्रश्लिक्ष्य ईशस्तदर्थो ग्राह्यः । ईड्यते इति इड् । एतस्य ऋग्वेदात्मकत्वात्-अज्द्वयमध्यगतस्य डकारस्य स्थानेलकार आदेशः । "अग्निमीले पुरोहितमित्यादिवत्"। द्वयोश्चास्यस्वर-योर्मध्यमेत्यसम्पाद्यते स डकारो लकार इति प्रातिशाख्यम् । तत एव द्वितीयतृतीयकूटयोर्यजुः सामात्मकत्वञ्च । यद्यपि "कामो योनिः कमला वज्रपाणिरित्यत्र वज्रपाणि शब्देन लकार एवोद्धृतः तथापि डलयोरभेदाभिप्रायेणादोषः । क्वचिच्चत्रिखण्डीगतास्त्र-योऽपि मोहार्ण पदेन लकारा एवोद्धृताः । ह्रीं इति विशेष्यम् । नपुंसकं नाम ब्रह्मलक्षकम् । तेन विधिहरिगिरिशैरीड्यं ब्रह्मेति प्रथमकूटार्थः । हसः हास्यम् - अर्श आदित्वादचि हसो हास्ययुक्तः को मुखं यस्य, अथवा हासस्यानन्दजन्यत्वात् - आनन्दे हस पदस्य लक्षणा । कश्च हश्च कहौ चन्द्रसूर्यौ लौ नेत्रे यस्य तत् कहलम् । मुखे सूर्येऽपि कः स्मृतः" हः कोपे वरुणे चन्द्रे, "इन्द्रे लोचने लः स्यात् इत्येकाक्षरनिघण्टुः" । हसकहलपदयोः कर्मधारयः । प्रकाशकत्वाच्चिद्रूपता । ततो हसद्वदनं रवीन्दुनेत्रं आनन्दचिद्रूपं वा विधिहरि गिरिशेड्यत्वे हेतू हसत्व कहलत्वे तेनामितानन्दं चिदब्रह्मेति द्वितीयकूटार्थः । यथा प्रसन्नवदनं रवीन्दुनेत्रं आनन्दचिद्रूपं ब्रह्मातो विरिञ्च्यादिवन्द्यम् सकलकलाभिः सहितं सकलं ह्रीं ब्रह्मेति तृतीयकूटार्थः । गुणगण कथनाद्विद्यायाः सगुणार्थः ।।५४।।

श्रीषोडशी महामन्त्र की व्याख्या -:

अर्थ -: श्रयति - शक्तिरूप से जो शिव का आश्रय ले वह श्रीः । श्रीयते- या समस्त गुण जिसका आश्रय ग्रहण करते हैं । परशिव के द्वारा भी जो सेवित हो वह श्री । उस श्री का जो बोध कराती है । "ह्रीं" यह मायाबीज है, हल्लेखा का बोधक है । "क्लीं" बीज कामबीज है यह समस्त अर्थों को प्राप्त कराता है । "ऐं" बीज वाग्भव बीज है । यह समस्त शब्दों के अर्थों का अवबोधक है । "सौः" इसे ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी परा शक्ति का बोधक कहा जाता है। प्रणव (३) वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ इन भेदों से सगुण और निर्गुण वेदान्तवेद्य पर तत्त्व का बोधक है। पुनः -

"ह्रीं" - यह बीज समस्तशक्तियों के अधिष्ठान एवं सभी के सर्वाधिष्ठान ब्रह्म का बोधक है। "श्रीं" यह समस्त ऐश्वर्य एवं समस्त माधुर्य के अधिष्ठान का बोधक है । ये बीज पञ्चदशी महामन्त्र के आरम्भ एवं प्रतिलोम विपरीत क्रम से आदि और अन्त में सम्पुटित रहते हैं इसी से कूटत्रय सहित षोडशी सम्पन्न होती है । (षोडशी मन्त्र- ॐ ऐं ह्रीं श्रीं - श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः- क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं - सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं) नमः । (श्रीपादुकां पूजयामि नमः) मूल पञ्चदशी महामन्त्र का सगुणार्थ कूटत्रय के वर्णों के विवेचन से इस प्रकार हैं - सर्वप्रथम कादिकूट- (वाग्भवकूट- क ए ई ल ह्रीं) के वर्णों का अर्थ- क वर्ण प्रजापति (ब्रह्मा) है, एकार विष्णु है, एकार के उत्तर में स्थित अकार (पूर्वरूप से) का प्रश्लेष करके ईश उसका अर्थ लेना चाहिये - और अन्त में "ई" वर्ण - "ईड्यते - (ईड् स्तुतौ) स्तुति की जाती है। यह अर्थ हुआ इस धातु में अच् - प्रत्याहार का स्वर ई है जो स्तुति परक है । अतः यह कूट (कादिकूट) ऋग्वेदात्मक होने से दो अचों के मध्य धातु का "ड्" है उसे दो अचों के मध्य में होने से "ल" आदेश हुआ । "यथा - अग्निमीळे पुरोहितम् ० (बह्वृच् प्रतिशाख्य- १/१०) में ड् के स्थान में ळ आदेश हुआ वैसे ही यहाँ (कादिकूट) हुआ । इस वैदिक ऋक् के ज्ञापन से; क्योंकि यह कूट ऋग्वेदात्मक है इस

कारण और वाग्भवकूट भी माना जाता है। प्रातिशाख्य नियम है, कि "द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ळकार:" इति अर्थात् यह "ड" अच्द्वय के मध्य में आकर ळकार (लकार) परिणत होता है। इसी ज्ञापन से प्रथम कूट ऋग्वेदात्मक तथा द्वितीय और तृतीय कूट । हादि, और सादि) क्रमश: मध्यकूट (द्वितीय) यजुर्वेदात्मक और तृतीय शक्तिकूट (हादिकूट) सामवेदात्मक माने जाते हैं । यद्यपि "कामो योनि: कमलावज्रपाणिर्गुहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्र: । पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्व मातादिविद्योम् ।। १४ ।। देव्यथर्वशीर्ष) इस मन्त्र में वज्रपाणि "शब्द से लकार ही लिया है तथापि डल दोनों में (ल और ळ में अभेद माना गया है । और कहीं-कहीं तीनों खण्डों में (लकारत्रय) तीनों ही ल" वर्ण "मोहार्ण " पद से लकार रूप में ही उद्धृत् है । "ह्रीं " यह विशेष्य है बाकी पूर्ववर्ण विशेषण हैं तथा ह्रीं" यह परब्रह्म का वाचक होने से नपुंसक लिङ्ग है या अव्यय है; क्योंकि यह स्वरादि आकृतिगण में मान्य है । त्रिशती स्तोत्र में ९९ वाँ मन्त्र केवल ह्रीं है वह नमोऽन्त प्रयोग में, "ह्रीं नम:" यही प्रयोग मान्य है । इससे यह अर्थ निकला कि ब्रह्मा, विष्णु, गिरिश त्रिदेवों के द्वारा स्तुति किया जाने वाला ब्रह्मतत्त्व" यह प्रथमकूट का अर्थ है ।

द्वितीय कूट में (ह स क ह ल ह्रीम्) में "ह स" यहाँ "हस:" इति हास्य अर्थ में है, "अर्श आदिभ्योऽच्" इस सूत्र से मत्वर्थक अच् प्रत्यय हुआ (मतुप् प्रत्यय-इन अर्थों में विहित है- यथा - भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादय: वार्तिक ३१८६) मत्वर्थीये प्रकरणे तदस्यास्त्यस्मिन्निितिमतुप्-५/२/९४) । अर्शआदिभ्योऽच् - ५/२/१२७) आकृति गणोऽयम्) । यहाँ कूट में अर्थ होगा- हस: हास्य युक्त: को =मुखंयस्य तत् -अर्थ यह हुआ । हास्य युक्त मुख है जिसका वह । अथवा "हास" यह आनन्द जन्य है इस कारण "हस" पद की लक्षणा आनन्द अर्थ में होगी । आगे के वर्णों में - कश्च, हश्च, कहौ, अर्थात् क- सूर्य और ह- चन्द्र ये दोनों लौ नेत्रे यस्य तत् कहलम् "याने सूर्य और चन्द्र दोनों नेत्र हैं जिसके वह "कहल"।

"मुखे सूर्येऽपि "कः" स्मृतः, "ह" कोपे वरुणे चन्द्रे "इन्द्रे" लोचने लः "स्यात्" यह प्रमाण एकाक्षरनिघण्टु का है । हस-कहल इन दोनों पदों का कर्मधारय समास है अर्थ हुआ प्रकाशक होने से चिद्रूपता तदनन्तर हसद्वदनम् = हास्य पूर्ण मुख, सूर्यचन्द्रनेत्र और आनन्दचिद्रूप ब्रह्मा विष्णु गिरिश के द्वारा स्तुति योग्य है इसमें हेतु (कारण) हसत्व और कहलत्व ये दोनों हैं इससे अमित आनन्दरूपचिद्ब्रह्म है यह द्वितीयकूटार्थ है ।

तृतीयकूट का विवेचन - यथा-: प्रसन्नवदन सूर्यचन्द्रनेत्रों वाला आनन्दचिद्रूप ब्रह्म है । अतः विरिञ्चि (ब्रह्मा) विष्णुगिरिशादि देवों का वन्दनीय वह समस्त कलाओं के सहित होने से वह स क ल ब्रह्म है अर्थात् ह्रीं रूप है । यह तृतीय कूट का अर्थ है । इस प्रकार गुणगणों के कथन से पञ्चदशीमहाविद्या पञ्चदशीमूलविद्या का यह सगुणार्थ है ।। यहाँ सर्वत्र "सुलोप" शास्त्रसम्मत है ।।५४।।

मन्त्र के सगुणार्थ प्रतिपादनाङ्ग में अनुलोम प्रतिलोम बीजसंपुटित षोडशी मन्त्र का आविर्भूतशब्दार्थ (वाच्यार्थ) - यथा-

महावाक्यार्थ विवेचना -: यथा-

४ (**कुण्डलिनीमंत्रपूर्व**) शक्तिरूप से शिवाश्रित अथवा समस्त गुणों की आश्रय, परशिव द्वारा सेवित श्री का बोध कराने वाली (श्री) हल्लेखा की बोधक (ह्रीं) समस्त अर्थ प्रापक कामबीजरूपा (क्लीं) समस्त शब्दों की अर्थावबोधिका (ऐं), ब्रह्मविद्यास्वरूपिणीपराशक्ति की बोधिका (सौः) और वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ भेदों से सगुण निर्गुण (साकारनिराकार) वेदान्तवेद्य परतत्त्व सुवोधिका (बीजार्थो से पूर्वानुलोमा) शक्तिविशिष्टकूटत्रयास्वरूपा- पुनः पूर्वानुलोमित बीजार्थों से प्रतिलोमित वह कामेश्वराङ्कनिलया अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिका समष्टि व्यष्टिरूपा श्रीमाता श्री शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बा महात्रिपुरसुन्दरी-पराभट्टारिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं- श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौः - क ए ई ल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं- सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं - श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।।

५५ गद्यखण्ड- मूलम् -यथा -: विधिहरिशिवबोधकाः क ए अ (प्रश्लिष्टाकारः) एते वर्णाः सृष्टिस्थिति भङ्गजनकदेवता-वाचकत्वात् -तल्लक्षकाः । नामैकदेशन्यायेन ईश्वरवाचीकारः सदाशिववाचको डकारः (लकारः) ताभ्यां तिरोधानानुग्रहौ लक्षितौ । एतेन ''यतो वा इमानि-भूतानि जायन्ते'' इत्यादि श्रुतिषूक्तं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणमिहोक्तम् । तेन सृष्टिस्थितिलयतिरो-धानानुग्रह पञ्चकृत्य कारणं ब्रह्मेति प्रथम कूटार्थः ।

हस आनन्दः कं सत्यं हं अनन्तं लं ज्ञानं ''सखा कश्च बुधैः प्रोक्तः'' इति कोशात् । सखिवाचकस्य ककारस्य सखित्वमाप्तत्वं यथार्थवक्तृत्वमिति रीत्या सत्यमर्थः । ह्कारस्य व्योमबीजत्वात्त-स्यानन्ततत्वादानन्त्यमर्थः । लोचनवाचित्वाल्लकारस्य ज्ञानमर्थः। एतेन स्वरूपलक्षणं ब्रह्म द्वितीयकूटार्थः ।।

एवं ब्रह्म तटस्थस्वरूपलक्षणयुगेन निर्णीय तदभेदो जीवगणे तृतीय कूटेनोच्यते ।।

सकल पदं जीवपरम् । शक्तिबीजं ब्रह्मरूपरम् । सामाना-धिकरण्यात् - लक्षित शुद्धयोरभेदो बोध्यते -

यथा- ''तत्त्वमसीतिमहावाक्ये तत्त्वं पदार्थयोरेकविभक्ति-कत्वरूप सामानाधिकरण्याद्-अभेदो-बोध्यते । सच वाच्यार्थ-योरसम्भवात् - भागत्यागलक्षणया लक्ष्यपदार्थयोरभेदो बोध्यते। तथैवात्र तत्पद वाच्यः सृष्ट्यादिकृत्यपञ्चकजनकः स एव ''यतो वा इमानीति'' श्रुत्युक्तः । सर्वकृत्यातीतं निर्विशेषं ब्रह्म । तदपि ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्यत्रोक्तम् । एवं त्वं पदवाच्यार्थो जाग्रदाद्य-वस्था पंचक विशिष्टः। स च तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहृत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतास्मा अन्नाय धावति तद्यथा महामत्स्य इत्यादिभिरुक्तः। लक्ष्यार्थस्तु अवस्थातीतं ब्रह्म तदपि योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु

हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः, न दृष्टद्रष्टारं पश्येः, इत्याद्युक्तम् । एवमवान्तर वाक्यैर्वाच्यार्थलक्ष्यार्थयोर्निणये सति महावाक्ये लक्ष्यार्थयोरभेद बोधः । प्रकृते तृतीय कूटस्थ सकल पदेन कलाभिरवस्थाभिः सहितः इत्यर्थकेन वाच्यार्थस्योक्तावपि लक्ष्यार्थानुक्तेर्न्यूनताभाति तथापि कूटद्वयवृत्त्या त्वं पदस्य वाच्यार्थ लक्ष्यार्थपरत्वेनादोषात्। तृतीय कूटेन ''सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति'' श्रुत्यर्थो वा वोध्यते । सर्वं जगत् देवीरूपमित्यर्थः ।। सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्। अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् (मूर्तिरहस्ये) ।

(एवं वरिवस्यारहस्ययोगिनीहृदयस्वच्छन्द संग्रहकाम-कलाविलासादिरीत्या पञ्चदश्याः षोडश्यांश्च संक्षेपेणार्था उक्ता, इति तेन राजराजेश्वरी सुप्रीतास्तु ।। -

श्रीकरपात्रस्वामिविरचिते श्रीविद्यारत्नाकरे

श्रीविद्यामन्त्रभाष्यं सम्पूर्णम्।।

अर्थ -: अन्तिम- उद्देश्यरूप - महावाक्यार्थ- विवेचन-यथा-: पञ्चदशी मूलविद्या के प्रथम कूट में - ककार, एकार और प्रश्लिष्ट अकार है, ये वर्ण क्रमशः - सृष्टि, स्थिति और संहार- कार्यों के देवता- क्रमशः, ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं यह लक्षणा से ज्ञात होते हैं । नामैकदेशन्याय से-अर्थात् नाम के एक भाग (अंश) से अर्थबोध- यहाँ ईकार ईश्वर का वाचक है, और सदाशिव का वाचक ड कार(ळकार लकार) ईकार और डकार (हकार-ळकार) से तिरोधान और अनुग्रहरूप कार्य लक्षित होते हैं, (लक्षणया), यथा- यतो वा इमानि भूतानि जायन्तेयेन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति । (तैत्तिरीये- भृगुवल्ली १) । इत्यादि वचन वेदों में कहे गये हैं; जो ब्रह्म के तटस्थ लक्षण हैं, जो यहाँ कहे गये हैं इससे सृष्टि स्थितिसंहार तिरोधान और अनुग्रह नामक पाँच कृत्यों का कारण ब्रह्म है । यह प्रथम कादिकूट (वाग्भव कूट = क ए ई ल ह्रीम्) का अर्थ है ।।-

द्वितीयकूट- का महावाक्यार्थ इस प्रकार है-: यथा-: द्वितीय

कूट- हादिकूट- (हसकहल ह्रीम्)- ह स = आनन्द रूप है, ''कं'' = सत्य रूप है, ''हं'' अनन्तरूप है । और ''लं'' ज्ञानरूप है, कोश में ''सखा कश्च बुधे: इस आधार पर ''क'' सखिवाचक भी है । सखिवाचक

ककार का सखित्व अर्थात् - आप्तत्व (आप्तस्तु यथार्थवक्ता) याने यथार्थ वक्तृत्व इस रीति से सत्य अर्थ है ककार का, हकार व्योम बीज है, व्योम अनन्त है अत: हकार का अर्थ- आनन्त्य है, अर्थात् अनन्तत्व है, लकार का अर्थ लोचन है (प्रत्यक्षज्ञानवाचक) अत: लकार ज्ञान वाचक है । इससे ब्रह्म का स्वरूपलक्षणलक्ष्यार्थ से होता है- यही इस द्वितीय कूट (हादिकूट) का अर्थ है ।।

इसके अनन्तर तृतीय कूट (सादिकूट- सकलह्रीम्) का विवेचन- यथा- इस प्रकार ब्रह्म का तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण प्रथम कूट तथा द्वितीयकूट के अर्थ द्वारा व्यक्त करके ब्रह्म का जीवगण में अभेद इस तृतीय कूट के अर्थ द्वारा व्यक्त किया जा रहा है- यथा-: तृतीयकूट में जो ''सकल'' पद हैं वह जीवपरक है यह जीव परक इसलिये है, कि जीव में जाग्रत् , स्वप्न सुषुप्ति रूपतीन कलाएँ (अवस्था) हैं, और शक्ति बीज ब्रह्मपरक है जीव और ब्रह्म में सामानाधिकरण्य से लक्षित (जीव) और शुद्ध (ब्रह्म) में अभेद का बोध होता है । यथा- ''तत्त्वमसीति'' महावाक्य में तत् एवं त्वं इन दोनों पदों में समान विभक्ति (प्रथमा- एकवचन-सु प्रत्यय) है अत: इन दोनों पदों में एक विभक्तिकत्वरूप सामानाधिकरण्य से अभेद का बोध होता है, और वह अभेद वाच्यार्थों में अर्थात् तत् = याने ब्रह्म और त्वं'' याने जीव इन वाच्यों के अर्थ से अभेद असम्भव है भले ही विभक्तिगत समानता हो किन्तु भागत्यागलक्षणा द्वारा ही (लक्षणा के तीन भेद हैं- भागलक्षणा, त्यागलक्षणा और भागत्यागलक्षणा) लक्ष्य पदार्थों में अभेद का बोध होता है । उसी प्रकार यहाँ भी तत् पद का वाच्यार्थ सृष्टि, स्थिति, पालन, संहार, तिरोधान और अनुग्रहरूप पाँचकृत्यों का जनक है वही ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' इत्यादि तैत्तिरीय श्रुति में कहा गया है । परन्तु लक्ष्यार्थ तो सभी कृत्यों से

(पञ्चकृत्यों) अतीत निर्विशेष ब्रह्म है । उसे भी "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म०" ऐसा कहा है । इसी प्रकार "त्वं" पद का वाच्यार्थ - जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति (तुरीय, तुरीयातीत) अवस्था पञ्चक का जनक जीव है । और वह ऐसे है- जैसे इस आकाश में - "अस्मिन्नाकाशेश्येनो वा सुवर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्नाय धावति तद्यथा महामत्स्य" इत्यादिभिरुक्तः" परन्तु लक्ष्यार्थ तो अवस्थाओं से अतीत ब्रह्म है और वह भी "योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः, न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येः इत्यादि श्रुतिवाक्य कहे गये हैं । इस प्रकार अवान्तर वाक्यों से वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थों के निर्णय होने पर महावाक्य में लक्ष्यार्थों में अभेद का बोध होता है ।

प्रकरण में तृतीय कूट में स्थित "सकल" पद से कलाओं से और अवस्थाओं के सहित ऐसा अर्थ करने से वाच्यार्थ की उक्ति होने पर भी लक्ष्यार्थ की अनुक्ति रूप न्यूनता व्यक्त होती है तो भी दो कूटों की दो बार आवृत्ति से त्वं पद का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ परत्व होने से कोई दोष नहीं है । महावाक्य में दोनों लक्ष्यार्थों का जीव ब्रह्म अभेद बोध होता है । या -

तृतीय कूट से "सर्वंखल्विदं ब्रह्म इति इस श्रुत्यर्थ का बोध होता है । अर्थात् - यह सम्पूर्ण जगत् देवीरूप है ।। (सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्) अतोऽहं विश्वरूपां तां (त्वां) नमामि परमेश्वरीम् ।। (मूर्ति रहस्ये) (मूर्ति रहस्ये- दुर्गासप्तशत्याम्)

इस प्रकार वरिवस्यारहस्य, योगिनी हृदय, स्वच्छन्द संग्रह कामकला आदि ग्रन्थों की पद्धति के आधार पर पञ्चदशी महामन्त्र और षोडशी महामन्त्र के संक्षेप से अर्थ कहे गये हैं- इस प्रयास से भगवती श्रीमाता राजराजेश्वरी पराभट्टारिका ललिताम्बा महात्रिपुरसुन्दरी सुप्रसन्न हों ।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ।। (महिम्नस्तोत्रे)

अस्यानुसारम् -

तव तत्त्वं न जानामि कीदृश्यसि महेश्वरि !
यादृश्यसि महादेवि तादृश्यै ते नमो नमः।।

पुनरपि -

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम् ।। (गीता-९/२७)

इमामाज्ञामनुसरन् -

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ।
यत्तपस्यामि गोविन्द! तत्सर्वं भवदर्पणम् ।। (अनुवादकः)

कञ्जासनादिसुरवृन्दलसत्किरीट,
कोटिप्रघर्षणसमुज्जवलदंघ्रिपीठे ।।
त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं,
दीनं विलोकयदयार्द्रविलोचनेन ।।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः,
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं ,
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तवजननि वाचांस्तुतिरियम् ।।

साङ्गा सशक्तिका सायुधा समुद्रा सपरिवारा सावरणा अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायिका। श्रीमाता श्रीशिवा शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ह्रीङ्काररहिमवद्गङ्गा श्रीमल्ललिताम्बा महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका सुप्रीतास्तु ।

यस्यान्तन्नादिमध्यन्नहिकरचरणन्नामगोत्रन्नसूत्रम् । नोजातिर्नैववर्णो न भवति पुरुषो नो नपुंसन्नचस्त्रीनाकारन्नो विकारन्नहिजनिमरणन्नैव-पुण्यन्नपापम् । नोऽतत्त्वं तत्त्वमेकं सहजसमरसं सद्गुरुन्त्वां नमामः।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। इति शम् ।।

।। श्रीकरपात्रस्वामिविरचिते श्रीविद्यारत्नाकरे
श्रीविद्यामन्त्रभाष्य सम्पूर्ण हुआ ।।

परिशिष्ट

परिशिष्ट भाग (१)

श्री विद्यामन्त्र भाष्य:

विषुव परिचय -: विषुव -(सन्धिकर्म) सात प्रकार के हैं - यथा -: प्राण[१]विषुव, मन्त्र[२]विषुव, नाडी[३]-विषुव, प्रशान्त[४]विषुव, शक्ति[५]विषुव, काल[६]विषुव, तत्त्व[७]विषुव ।

संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार है -:

१ **प्राणविषुव** -: प्राण, आत्मा और मन का पारस्परिक योग ।

२ **मन्त्रविषुव** -: अभिव्यज्यमान नाद को जापक का अपनी आत्मा मानकर भावना करना ।

३ **नाडीविषुव** -: मूलमन्त्र के द्वारा छह चक्र और द्वादशग्रन्थि का क्रमशः भेद करने से मध्यनाडी में (सुषुम्णा में) नादस्पर्श होता है । मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक बीज शिखरवर्ती नाद के उच्चारित होने से नाडीविषुवरूप स्पर्श का उद्भव होता है ।

४ **प्रशान्तविषुव** -: नादान्त तक मन्त्रावयव की शक्ति से लय भावना प्रशान्तविषुव कही जाती है ।

५ **शक्तिविषुव** -: शक्तिमध्यगत नाद के समना तक चिन्तन को शक्तिविषुव कहा जाता है ।

६ **कालविषुव** -: जहाँ तक काल का सञ्चार है (उथलपुथल है) समना पर्यन्त सीमा है कालकी कालातीत उन्मना तक नाद के चिन्तन को कालविषुव कहते हैं ।

७ **तत्त्वविषुव** -: नाद ही तत्त्व का अभिव्यञ्जक है । नाद की समाप्ति के बाद ही तत्त्वविषुव होता है । समना में विषुव का अन्त नहीं होता । योगीगण तो उन्मना को नाद का अन्त नहीं मानते । उन्मना के ऊपर उन्मना का भेद करने से नादलीन होता है, तब तत्त्वबोध आत्म साक्षात्कार स्वभावतः होता है यही तत्त्वविषुव है ।।

परिशिष्ट भाग (२)

श्रीविद्यामन्त्र भाष्य

मन्त्रार्थ भेद और संक्षिप्त परिचय -:

मन्त्र जप में अर्थज्ञान के बिना अर्थभावना नहीं हो सकती। अनेकों मन्त्रार्थ हैं मुख्य रूप से ६ प्रकार के मुख्य हैं फिर भी अन्य आचार्यों के मत से सोलह प्रकार के हैं, मुख्य छह प्रकार इस प्रकार हैं - भावार्थ[१], सम्प्रदायार्थ,[२]निगर्भार्थ,[३] कौलिकार्थ,[४]रहस्यार्थ,[५] और महातत्त्वार्थ[६]। इनकी परिभाषा इस प्रकार है -

१ **भावार्थ** -: मन्त्र अवयव भूत अक्षर का अर्थ।

२ **सम्प्रदायार्थ** -: सर्वकारण कारण पूर्ण परमेश्वर ही सभी मन्त्रों के मूल गुरु हैं। उनके मुख से स्वीय मन्त्र का उद्भव और उसका अवतरणक्रम या परम्परा का ज्ञान ही मंत्र सम्प्रदायार्थ ज्ञान है।

३ **निगर्भार्थ** -: परमेश्वर, गुरु और अपनी आत्मा के ऐक्य का अनुसंधान ही निगर्भार्थ है।

४ **कौलिकार्थ** -: परमेश्वर निष्कल है, निरवयव-गुरु भी वही है। निष्कल परमेश्वर को भी जो अपने आत्मरूप में साक्षात्कार करते हैं वही गुरु हैं। इसलिये गुरु और परमेश्वर अभिन्न हैं। चक्र, देवता, विद्या, गुरु और साधक के ऐक्य का अनुसन्धान ही कौलिकार्थ है।

५ **रहस्यार्थ** -: मूलाधार स्थित कुण्डलीरूपा विद्या ही साधक की स्वात्मा है, ऐसी भावना का नाम रहस्यार्थ है।

६ **महातत्त्वार्थ** -: निष्कल, अणु से अणुतर और महान् से महत्तर, निर्लक्ष्य, भावातीत, व्योमातीत परमतत्त्व से प्रकाश के आनन्दरूप में विश्वातीत और विश्वमय अपने गुरू प्रवोधित निर्मल स्वभाव स्वकीय आत्मा का ऐक्य में अनुप्रवेश-महातत्त्वार्थ है।

इन सभी के अर्थ विज्ञान के फलस्वरूप सम्यक् रूप से

विकल्पजाल निवृत्त होता है ।।

योगिनी हृदय के पूर्वोक्त ६ अर्थ (पञ्चदशी मन्त्र) अमृतानन्द योगी के अनुसार वर्णित हुए हैं, वे प्राञ्चमत के हैं, यह भास्करराय का मत है, जो भास्करराय का मत नव्य मत माना जाता है । उन्होंने पूर्वोक्त योगिनी हृदयोक्त ६ अर्थों के अतिरिक्त ८ अर्थों का भी विवेचन किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं -: १. नामार्थ, २. शब्दरूपार्थ, ३. नामैकदेशार्थ, ४. शाक्तार्थ, ५. सामरहस्यार्थ, ६. समस्तार्थ, ७. सगुणार्थ, ८. महावाक्यार्थ । इनके अर्थ इस प्रकार हैं -

नामार्थ[१] और शब्दरूपार्थ[२] - कारिका -:

तत्तद्वर्णार्थेयं तत्तद्वर्णस्वरूपेयम् इति तु विद्याया नामार्थः, शब्दरूपार्थः ।।२/११०।। (वरिवस्या)

अर्थात् - श्रीविद्या उन उन वर्णों के अर्थ से भिन्न नहीं है, यह नामार्थ है, तथा यह विद्या उन उन वर्णों की स्वरूप है । यह "शब्द रूपार्थ " की परिभाषा है ।।

नामैकदेशार्थ - कारिका -:

कल्याण्येकाक्ष्यर्यावीशित्री चापि ललिताच ।।
इत्थं नामत्रिशतीवाच्यो ऽर्थस्तदक्षरस्यापि ।।

२/१११।।(वरिवस्या रहस्य)

नामैकदेशमात्रे नामग्रहणस्यलोकसिद्धत्वात् ।।
नामोपस्थितिगम्यः प्रोक्तो नामैकदेशार्थः ।।

२/११२।।(वरिवस्या रहस्य)

अर्थ -: कल्याणी, एकाक्षरी, ईशित्री, ललिता आदि ३सौ नाम इनका अर्थ मन्त्र के वर्णों से व्यक्त होता है । नाम के एक अंश ग्रहण द्वारा देवी के समस्त नाम का ग्रहण होना लोकप्रख्यात (यथा "भमो" भीमसेनः, सत्या -सत्य भामा, गुरुर्लघु गलौ इत्यादि) सामनेदीय फुल्लसूत्र में बहुत प्रयोग प्राप्त होते हैं (भास्कर टीका) । अतः नाम का सम्पूर्ण अर्थ "नामैकदेशार्थ " अर्थात् नाम का सम्पूर्ण अर्थ नामके एक अंश

का अर्थ है ।।

(४) **शाक्तार्थः** - द्विविधः -१ अवयवार्थ, २ शक्तिसमूहार्थ ।

१म भेद - अवयवार्थ - इसका अभिप्राय है - देवी के अवयवों का वर्णन । मूल कारिका इस प्रकार है -

वाक्काम शक्तिकूटैरवयवशो विग्रहो मातुः ।

प्रतिपाद्यौ ऽत्राकाण्डादामध्यादा च पादाग्रात् ।।२/११४।।

जैसे ललिता सहस्रनाम में - ४ श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूप-मुखपङ्कजायै नमः । ४ कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै नमः । ४ शक्तिकूटैकतापन्न कट्यधोभागधारिण्यै नमः । ४ मूलमन्त्रात्मिकायै नमः । ४ मूलकूटत्रयकलेवरायै नमः ।।

२ भेद - शक्तिसमूहार्थ -

वेधो भारत्यौ, माधव लक्ष्म्यौ, रुद्रपार्वत्यौ ।

रेफान्तवर्णषट्कस्यार्थान् क्रमशोविजानीयात्।।२/११५।।

५- सामरस्यार्थः -

त्रिशतीस्तोत्र में माहात्म्य में यह स्पष्ट संकेत किया है - यथा-

कत्रयं हद्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः ।

शेषाणि शक्त्यक्षराणि ह्रीङ्कार उभयात्मकः।। त्रिशती स्तोत्रम्।

मूल मंत्र में (पञ्चदशी) तीन ककार, दो हकार शैव भाग है, तथा शेष वर्ण (३ लकार, २ सकार, शुद्ध स्वर ए, ई,) शाक्तभाग हैं, और ह्रीङ्कार शिवशक्ति सामरस्य रूप है, एवं शिव शक्ति में भी सामरस्य है । यही सामरस्यार्थ है ।। इस की मूल कारिका इस प्रकार है -

कहयोर्लस्त्योरर्थौ शिवशक्ति शुद्धयोरचोः शक्तिः ।।

उभयोः समरसभावो हृल्लेखायाः परं ब्रह्म ।।२/११९।।

अर्थात् - उपरिलिखित त्रिशती की कारिका इसी अर्थ को व्यक्त करती हैं - अगली कारिका भी यथा -:

ब्रह्मैव शिवः शक्तिश्चेति प्रत्येक कूटार्थः ।।

शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थः।।२/१२०।

६ **समस्तार्थ** -: इसका विस्तृत अर्थ - शब्दश: श्रीभास्करराय ने वरिवस्या रहस्य "नामक ग्रन्थ में द्वितीयांश में १२१वीं कारिका से लेकर १३५वीं कारिका पर्यन्त किया है, जिसे समझने के लिये इस ग्रन्थ का जिज्ञासु साधक अवलोकन करें । अन्त में वह कारिका निम्नांकित है-: समस्तार्थपदनिरुक्तिपूर्वकमुपसंहरति -:

बहुतरसमासयोगात् समस्तपुरुषार्थ साधनोक्तेः ।।

संक्षेपात् सारोक्तेः श्रीविद्यायाः समस्तार्थः ।।२/१३३।

अर्थात् -: पञ्चदशीमन्त्र के पदों को समास पद्धति से तथा, यह मंत्र समस्त पुरुषार्थों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और परमुपरुषार्थ ब्रह्मात्मैक्य बोधोदय) के साधन धर्म से युक्त है, इस कारण, और संक्षेप सार रूप में कथन होने से यह श्रीविद्या का समस्तार्थ है ।।

७ **सगुणार्थः- को विधि :-**

एकारो हरिः, अकार ईश :- स्तवार्थमीड्पदम्।

(क,ए,ई,ल,ह्रीम्) द्विस्वरमध्यगतस्य डकारस्य लकार आदेशः ।। २/१३४ ।।

प्रथमकूट - **तेनार्वेदात्मत्वं सूचितमाद्यस्य कूटस्य ।।**

वाग्भवकूट - **क्रमशोऽग्रिमकूटयुगे तेन यजुः सामता सिद्धा ।।२/१३५ ।**

(पञ्चदशी महामंत्र)

ह्रीमिति नाम विशेष्यं नपुंसकं ब्रह्मलक्षकत्वेन ।।

विधिहरिगिरिशैरीड्यं ब्रह्मेति प्रथम कूटार्थः ।। २/१३६ ।

अर्थात् :- ब्रह्मा, विष्णु, शिव से स्तुति किया जाने वाला विशेष्य ब्रह्म - प्रथमकूट का अर्थ-

७म - सगुणार्थ - में - द्वितीय - कामराजकूट - (ह स क ह ल ह्रीम्)

"हसकं" तु ह्सद्वदनं मतं " ककारस्य"वदनवाचित्वात् ।।

यद्वा "हस" आनन्दः "कः" सूर्यो "हस्तु" चन्द्रःस्यात् ।।२/१३७।

एतौ लौ "नयने यस्य, तत्तु" कहलं रवीन्दुनेत्रमिति ।।

तेन प्रकाशकत्वाच्चिद्रूपत्वं च निगदितं भवति ।। २/१३८ ।।

विधिहरिगिरिशेड्यत्वे हेतु एते हसत्व कहलत्वे ।

तेनात्यमितानन्दं चिद् ब्रह्मेति द्वितीयकूटार्थः ।।२/१३९।

अर्थात् -: मन्त्र में जो "ककार" वर्ण है, वह मुखवाची है, इस कारण "ह स क" का अर्थ हंसता हुआ मुख, अथवा - "ह स" का अर्थ आनन्द "क" का अर्थ सूर्य एवं "ह" का अर्थ चन्द्रमा है । ये दोनों (क एवं ह अर्थात् सूर्य एवं चन्द्रमा) जिसके नेत्र (ल) हैं, वह सूर्यचन्द्रनयनी "क ह ल" है । अतः प्रकाशक होने के कारण (उसकी) चैतन्यरूपता कही गई है ।

ये दोनों हसत्व एवं कहलत्व (ह्रीं) ब्रह्मा, विष्णु, एवं रुद्र के द्वारा ब्रह्म के स्तुत्य होने में (मूलभूत) कारण हैं, अतः द्वितीयकूट का अर्थ हुआ अपरिमेय आनन्द एवं चिद् रूप ब्रह्म ।।

सकल कलाभिः सहितं सकलं ब्रह्म तु तृतीय कूटार्थः ।।

(तृतीय कूट शक्तिकूट - इत्थं गुणगणकथनाद्विद्याया एष सगुणार्थः ।। २/१४० ।। स क ल ह्रीम्)

अर्थात् - समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म "स क ल" है, यह तृतीय कूट का अर्थ है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण गुणसमूहों के कथन द्वारा विद्या का यह "सगुणार्थ " व्यक्त हुआ है ।।

(८) **चरम प्रतिपाद्य** महावाक्यार्थ इस प्रकार है - यथा-:

विधिहरिशिववचना अपि क कार एकारको ऽकारः ।।

सृष्टिस्थिति भङ्गात्मक तत्तज्जनकत्वलाक्षणिकाः।।२/ १४१।

ईश्वर वाचीकारो वक्ति डकारः सदाशिवं ताभ्याम् ।।

लक्षणया तत्र तिरोधानानुग्रहणकृत्यता गदिता।।२/१४२।

अर्थात् -: ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये वचन भी क्रमशः ककार, एकार, और अकार इन मन्त्रगत वर्णों से अभिन्न हैं । इनका सृष्टि (ब्रह्मा), स्थिति (विष्णु), संहार (शिव) कारण होना और सम्बद्ध कार्यों का जनक होना लाक्षणिक है ।

पञ्चदशी मन्त्र में "ईकार" ईश्वर का वाचक है, मन्त्र में "ल" याने "ड" सदाशिव का वाचक है । लक्षणा वृत्ति के द्वारा इन दोनों वर्णों के द्वारा उन देवताओं में क्रमश: तिरोधान = निग्रह (ईशान) और अनुग्रह (पञ्चमुख =सदाशिव) करने की क्षमता व्यक्त करता है ।। "डो" महेश: समाख्यात: " यह वचन है ।।

"सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ब्रह्म के वेदोक्त "स्वरूपलक्षण का अर्थ द्वयकूट से -

'हस' आनन्दः, सत्यं "क" हमनन्तं च "लं" ज्ञानम् ।।
इत्थं ब्रह्म तटस्थ स्वरूप लक्षणयुगेन निर्णीय ।।२/१४३।
तदभेदं जीवगणे वक्ति तृतीयेन कूटेन ।।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यकलात्रितयेन साहित्यात् ।।२/ १४४।
'स क ल' पदं जीवपरं ब्रह्मपरं शक्ति बीजं स्यात् ।।
सामानाधिकरण्यात् तल्लक्षितशुद्धयोरभेदः ।।२/१४५।
अत्यल्पमिदं कथितं यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।।
इत्येवं बोधयितुं सकलपदं वा तृतीयकूटगतम् ।।२/१४६।
एवमवान्तरवाक्यैर्जीवब्रह्मस्वरूपमभिधाय ।।
तदभेदो वर्णित इत्येष महापूर्ववाक्यार्थः ।।२/ १४७ ।

इन कारिकाओं का अर्थ -: पञ्चदशी मन्त्र के २यकूट (ह, स, क, ह,ल, ह्रीम्) में "ह, स" ये वर्ण आनन्द वाचक हैं, "क" सत्यवाचक है, "ह" अनन्त का और "ल" ज्ञानका वाचक है । इस प्रकार ब्रह्म का "तटस्थलक्षण " और "स्वरूप लक्षण" इन दो अर्थों से निर्णय करके ।

मन्त्र के तृतीयकूट शक्तिकूट (स क ल ह्रीम्) द्वारा जीव और ब्रह्म में अभेद, कहता है । क्योंकि उसमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति रूप तीन कलाओं से युक्त होने के कारण । मन्त्र में स क ल पद जीव का वाचक है । तथा शक्तिबीज (ह्रीं) ब्रह्म का वाचक है । जीव और ब्रह्म में सामानाधिकरण्य होने से जीव और ब्रह्म द्वारा संकेतिक वस्तुऐं अभिन्न हैं। साररूप से यह संक्षेप में जीव ब्रह्म का ऐक्य व्यक्त करता है तृतीय कूट यह महावाक्यार्थ है।

परिशिष्ट भाग (३)

भगवती कुण्डलनी (आत्मशक्ति) रूपा हैं ।

भगवती श्रीमाता कामेश्वराङ्कनिलया कामेश्वरी अनन्त ब्रह्माण्डनायिका श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरीपराभट्टारिका व्यष्टिरूप में आत्मदेवता हैं। समष्टिरूप में अनन्त ब्रह्माण्डों की आत्मशक्ति है। महान अद्वैतसिद्धान्त प्रतिपादक भगवान आद्य शंकराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी नामक प्रसिद्ध अत्यन्त रहस्यगर्भित शतश्लोकी स्तोत्र में सर्वप्रथम ही शुभारम्भ करते हुए निस्संन्दिग्ध रूप से कहा कि-

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्
न चे देवं देवो नखलु कुशलः स्पन्दितुमपि

इसी स्तोत्र के आठवें

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणीद्वीपे नीपो पवनवति चिन्तामणि गृहे ।।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्
भजन्ति त्वां धन्याःकतिचन चिदानन्दलहरीम् ।।८।।

इस श्लोक में आचार्यवर्य चिदानन्दलहरी चिन्तन द्वारा चिद्रूपाकुण्डली शक्ति का सूत्रपात करके अग्रिम नवम श्लोक में वर्णन कर रहे है।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपिभित्वाकुलपथम् ,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।।९।।

इस श्लोक में आचार्य लक्ष्मीधर का समाधान यह है कि श्लोक में जो चक्रों की आनुपूर्वी दी गई है वह क्रमभंग का संदेह उत्पन्न करती है। परन्तु यह क्रमभंग नही है। श्लोक में जो चक्रों का क्रम आचार्य ने दिया है वह आकाशादि पञ्चतत्वों की उत्पत्ति का आधार लेकर चक्रों

में आगे पीछे का क्रम दिया है।

प्रचलित क्रम यह है मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र श्लोक में मूलाधार के बाद मणिपूर बाद में स्वाधिष्ठान का उल्लेख हुआ है। आचार्य ने इसी स्तोत्र के ३६ वें श्लोक से लेकर ४१ वें श्लोक तक इसी क्रम का वर्णन किया है। ३६ वें श्लोक में आज्ञाचक्र ३७ वें में विशुद्धिचक्र ३८ वें में अनाहतचक्र (हृदयगत) ३९ वें में स्वाधिष्ठान ४० वें मणिपूर तथा ४१ वें में मूलाधार का वर्णन किया है। ९ वें श्लोक में कुण्डलनी का सहस्रार में आरोहक्रम दिया है।

बाद के ३६ वें श्लोक से लेकर ४१ वें श्लोक ६ श्लोको में अवरोहक्रम से वर्णन किया है। नवम श्लोक के आगे १० वें श्लोक में आचार्य ने प्रपञ्च शब्द का प्रयोग किया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है–

सुधाधारा सारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः-
प्रपञ्चं सिन्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।।
अवाप्य स्वांभूमिं भुजग निभमध्युष्टवलयम्
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।१०।।

श्लोक में प्रपञ्च शब्द देह का नाम है । यह अण्डप्रपञ्च और पिण्डप्रपञ्च में संकेत है। अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड समष्टि पिण्ड अर्थात् (व्यष्टि) अण्ड और पिण्ड में ऐक्य का संकेत प्रपञ्च शब्द से है योगदीपिका में –

अण्डे तु ये प्रपञ्चाः स्युः पिण्डे ते च प्रतिष्ठिताः
लघुत्वं गुरुतान्चर्तै न भेदस्त्वण्डपिण्डयोः।।

लोक में भी " यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे " उक्ति है। इसका विस्तृत विवेचन इस प्रकार है–

अण्डे लोकालोक गिरिः, पिण्डे त्वचः अर्थात् ब्रह्माण्ड में लोकालोक पर्वत पिण्ड में त्वचा । ब्रह्माण्ड में समुद्र पिण्ड में रक्त । ब्रह्माण्ड में गंगादि नदियां पिण्ड में इडापिङ्गला आदि नाडियां, ब्रह्माण्ड में सूर्यादि

नवग्रह अन्धकार निराकरण के लिये देह प्रकाशक पिण्ड में ११ इन्द्रियां। ब्रह्माण्ड में ब्रह्म, पिण्ड में मन। ब्रह्माण्ड में महामेरू, पिण्ड में हृदयकमल। ब्रह्माण्ड में पर्वत, पिण्ड में अस्थियां। ब्रह्माण्ड में ब्रह्माण्डाभिमानी जीवात्मा, पिण्ड में देहाभिमानी जीवात्मा। ब्रह्माण्ड में सहस्रचर्तुर्युगरूप दिन के बाद सहस्रचर्तुयुग पर्यन्त रात्रि में अवान्तर प्रलय जलरूप ब्रह्मा की निद्रा, पिण्ड में दिन के बाद रात्री में निद्रा। ब्रह्माण्ड में रात्रि के बाद जागृत होने पर वर्तमान सूर्यादि नवग्रह प्रकाशन करते है, पिण्ड में जागने के बाद इन्द्रियों का संचार। ब्रह्माण्ड में चारों युगों में दिनों की कल्पना के अनुरूपशत संवत्सर पूर्ण होने पर ब्रह्मरूप जीव-अजीव इनका उत्क्रमण होने पर उस ब्रह्माण्ड का महादेव महाश्मशान काशी में ललाटवह्नि से दाह कर देते है, पिण्ड में भी मानववर्ष परिमाण के भीतर सौ वर्षो में (शतायुर्वैपुरूषः) वेदोक्ति के अनुसार जीवात्मा के देह से उत्क्रमित हो जाने पर बन्धुवर्ग द्वारा श्मशान में दाह कर दिया जाता है। इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड प्रपञ्च में ऐक्य है इसे आचार्य ने इस श्लोक में प्रपञ्चशब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार के पिण्डाण्डर्गत प्रपञ्च को सिंचित करती हुई वह कुण्डलनी तृप्त होती हुई पुनः स्वयं की आधारभूमि को प्राप्त कर अध्युष्ट वलय होती हुयी अर्थात् गुणान्मक त्रिवलय दग्ध होने पर कुलकुण्ड में निश्चिन्त होकर सोती है।

''**महासंहारेस्मिन् स्वपत्या सह विहरसे**'' कहा है। बालामानस पूजा में आद्य शंकराचार्य जी बालवत् प्रार्थना अन्त में करते है।

क्षणमथ जगदम्ब मञ्चकेस्मिन् मृदुतरतूलिकया विराजमाने
अति महतिमुदानिजेच्छया त्वं सुखशयनं कुरू मां हृदि स्मरन्ति

स्वात्मनिरूपण स्तोत्र में भी -

कवलित चंचल चेतो गुरूतर मण्डूकजात परितोषा ।
शेते हृदय गुहायां चिरतर मेकैव चिन्मयी भुजगी।।१४९।।

परिशिष्ट भाग (४)

सङ्कल्प के मुख्याङ्ग विनियोग का शास्त्रीय विवरण

विनियोग अर्थात् हमारी कामना चाहे भौतिक हो या दैविक हो अथवा आध्यात्मिक हो इसके शुभारम्भ करने के लिये सुदीर्घ काल से शास्त्रों में निर्धारित विनियोग का साङ्गोपाङ्ग रूप निश्चित किया गया है। किसी भी मन्त्र द्वारा अभीष्ट उपलब्धि के लिये सङ्कल्प का रूप निर्दिष्ट है। उदाहरणार्थ यथा प्रकरण के अनुसार श्रीपञ्चदशी महामन्त्र का जप करना हो तो जो सङ्कल्प का रूप बताया गया है। वह इस प्रकार है। -- ॐ अस्य श्री महात्रिपुरसुन्दरी पञ्चदशाक्षरी महामन्त्रस्य भगवान् आनन्दभैरव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः महात्रिपुरसुन्दरी देवता कादिकूटं बीजं हादि कूटं शक्तिः सादि कूटं कीलकं श्रीविद्यापरमेश्वरी प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। इस विनियोग (सङ्कल्प) रूप में ७ अंग हैं। ऋषि, छन्द, देवता बीज, शक्ति, कीलक और विनियोग।

इन सप्ताङ्गों का ऋष्यादिश्न्यास रूप से न्यास किया जाता है। यह न्यास सर्वप्रथम ही किया जाता है। न्यास अर्थात् कामनायुक्त साधक इन अङ्गों को अपने बाह्य एवं आन्तर अंङ्ग में सूक्ष्मतत्व रूप से न्यास करता है। इस भावना के स्थिरीकरण से वह उस कामना के अङ्ग से (सङ्कल्प से) तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। ऋष्यादिन्यास में सर्वप्रथम अङ्ग शिर है। इसमें ऋषिन्यस्त होते हैं। द्वितीय अङ्ग मुख है इसमें छन्द न्यस्त होते हैं। तृतीय अङ्ग हृदय है इसमें देवता न्यस्त होता है। चतुर्थ अंग गुह्य है इसमें बीज न्यस्त होता है। पञ्चम अंग पाद है इसमें शक्ति न्यस्त होती है। षष्ठ अङ्ग नाभि है इसमें कीलक न्यस्त होता है। तथा सप्तम अङ्ग करसम्पुट है या सर्वाङ्ग है इसमें विनियोग न्यस्त होता है।

मन्त्र जप के पूर्व श्रीमद् गुरुप्रदत्त इष्ट देवता के मन्त्र का सप्ताङ्ग विनियोग करना चाहिये। सर्वप्रथम ऋष्यादि न्यास है विनियोग अन्तिम अङ्ग है। इसका प्रथम अङ्ग है ऋषि अर्थात् अभिलषित इष्टदेवता के मन्त्र के ऋषि का क्या नाम है और ऋषि का न्यास कहाँ करना चाहिए। मन्त्र के द्रष्टा को ऋषि कहा जाता है। मन्त्र का निर्माण करने वाला ऋषि नहीं होता है। शास्त्रोक्ति है (ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः) अतः ऋषि का न्यास शिर में (मूर्धा) होता है। यह एक योगशास्त्रीय सङ्केत है शिर में सहस्रदलकमल है दलकमल अर्थात् सम्पूर्णवर्णसमूह वहाँ है ऋषि वहाँ शब्दब्रह्म शक्ति से प्रेरित मन्त्र का साक्षात् दर्शन करता है। अतः ऋषि का न्यास शिर में किया जाता है। न्यास में दूसरा अङ्ग है छन्द, छन्द शब्द गत्यर्थक है। वेद में वैदिक छन्द निर्दिष्ट हैं यथा गायत्री, अनुष्टुप ,बृहती, जगती, उष्णिक पंक्ति और त्रिष्टुप यही वैदिक मन्त्र लोकव्यवहार में वर्णछन्द और मात्राछन्द भेदों से बहुसंख्य हैं। वेद के ६ अंगों में छन्द वेद का पाद कहा गया है । छन्दः पादौतु वेदस्य । तन्त्रशास्त्र में षडध्वा कहे गये हैं। अध्वा अर्थात् मार्ग वर्णाध्वा पदाध्वा मन्त्राध्वा कलाध्वा तत्वाध्वा और भुवनाध्वा इन अध्वाओं में छन्द अर्थात् गतिशील होना , वह मन्त्र किस छन्द में ग्रथित है उसमें कहाँ तक चलना और किस संख्या में यति अर्थात् रुकना यह शास्त्र में (छन्दः शास्त्र में) निर्णीत है। इस कारण विनियोग का दूसरा अंग छन्द जिसका न्यास मुख में होता है। इसका रहस्य यह है कि मुख के तालु दन्त कण्ठ ओष्ट आदि स्थानों आन्तर वायु के टकराने से वैखरी नामक चतुर्थ वाणी से शब्द मुखरित होते हैं। उस अभीष्ट मन्त्र की शब्द पंक्ति का छन्दो मर्यादा में जिस छन्द का उल्लेख हुआ उसके अनुसार उच्चारण समझकर करना आवश्यक है। विनियोग तृतीय अंग हृदय है। हृदय में मुख्य मन्त्र जपने वाले मन्त्र के देवता का हृदय में न्यास किया जाता है। आन्तर चिन्तन में देवता का हृदय में मानसिक पूजन का विधान है। हृदय में अनाहतचक्र है। वही हृदयगुहा में उस देवशक्ति

(प्राणशक्ति) का अनुभव कराता है। तथा उससे सम्पूर्ण शरीर का संचालन होता है। चतुर्विध नाद (परा पश्यन्ति मध्यमा एवं वैखरी) में मध्यमा नाद की स्थिति भी हृदय में है। योगीजन अनहदनाद का श्रवण हृदय में करते हैं। इन्ही सभी हेतुओं से इष्टदेवता का न्यास हृदय में होता है। न्यास का चतुर्थ अंग गुह्यभाग में बीजरूप से मन्त्र का न्यास होता है। मन्त्र आद्यदृष्टा ऋषि को मन्त्र,वर्ण और बीजरूप से दर्शन देते हैं। उन वर्णात्मक बीजात्मक मन्त्र की शाब्दिक बीजात्म की आनुपूर्वी के विधान में वे ऋषि गुरुत्वेन प्रमाण होते हैं। वे मन्त्रबीज का कहाँ न्यास हो उपदेश में व्यक्त कर देते हैं। वहाँ मनमानी नहीं चल सकती । मूलकारण होने से और किसी भी अभिलषित वस्तु या कामना का सूक्ष्मतम् तत्व बीज में रहता है। हृदय, भूमि, श्रद्धा और निष्ठा आदि के जल सिञ्चन से अंकुरित पत्रित पुष्पित एवं फलित होता है। इसी लिये मन्त्र का बीज गुह्य में ही न्यस्त होता है। क्योंकि सृष्टि का उद्गम वही है। पञ्चम अंग पाद है उस अङ्ग में शक्ति का न्यास होता है। शक्ति अर्थात् ऊर्जा पाद कर्मेन्द्रिय है गमनागमनरूप क्रिया पाद से ही होती है वह कर्म स्थूलदृष्टि से तथा स्वयं और सामाजिक संबंधों में एवं देश और राष्ट्र की सेवा में सार्थक हो यह संकेत है। अर्थात् मन्त्र की क्रियाशक्ति का व्यक्ति एवं समाज, राष्ट्र के हित में प्रयोग हो क्रियारूप से । षष्ठ अंग नाभि है इस अंग में कीलकतत्व का न्यास होता है । कीलक का अभिप्राय यह है कि वह पाद में न्यस्त शक्ति (मन्त्रात्मिका) है वह अन्यत्र न चली जाय । शक्ति ऊर्जा है विद्युत है चंचल है उसका नियन्त्रण हो तथा लक्ष्य पर ही जाय अन्यथा व्यर्थता,निश्तेजता आदि विफलतायें छा जाती हैं । ऐसी स्थिति में शक्ति कीलित की जाती है। नाभि शरीर का मध्य एवं केन्द्र स्थान है समस्त स्नायुयों का मुख्य स्थान है प्राण की स्वास निःस्वास दो क्रियायें नाभि के बल से ही होती हैं योग में नाभिसंयमा भुवज्ञानं रूप सिद्धि होती है। यहाँ कीलन का यही यही अभिप्राय है। सप्तम अंग (अन्तिम अंग) करसम्पुट अथवा

सर्वांग है इसमें विनियोग का न्यास होता है इस विनियोग का कर सम्पुट या सर्वांग में न्यास साधक की सकाम,निष्काम कर्मशक्ति को साधक के तदरूप बना देती है क्योंकि इसका विनियोग करसम्पुट यानि क्रियाशक्ति अथवा सर्वांग अर्थात् सम्पूर्ण शरीर उस शक्ति से तदरूप होकर अपना और समाज का देश का राष्ट्र का हित कर सके। इस ऋष्यादिन्यास की मुख्यता इस न्यास प्रकार से ही ज्ञात होती है कि यदि यह नहीं किया गया हो तो साधक प्रत्यक्ष,अप्रत्यक्ष समस्त भौतिक दैविक विघ्नों से आक्रान्त हो सकता है।

मन्त्रभाष्य में पूज्य करपात्री जी ने पञ्चदशी और षोडसी मन्त्र दौनों पर भाष्य किया है । पञ्चदशी मन्त्र का ऋष्यादिन्यास पिछले खण्ड में लिखा गया है उसमें जो ध्यान है वह इस प्रकार है--

३. **बालार्कारुणतेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीम् ।**
नानालंकृतिराजमानवपुषं बालोडुराड् शेखराम् ।।
हस्तैरिक्षुधनुःसृणीं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीम् ।
श्री चक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां भजे ।।

श्री षोडशाक्षरी मन्त्र का ध्यान इस प्रकार है। साथ ही सङ्कल्प भी-

ॐ अस्य श्री षोडशीमहामन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्री षोडशाक्षरीमहात्रिपुरसुन्दरी षोडशाक्षरी देवता क ए ई ल ह्रीं बीजं । स क ल ह्रीं शक्तिः। ह स क ह ल ह्रीं कीलकम् । श्री राजराजेश्वरी प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यान इस प्रकार है -

४. **सिद्धिसिद्धवृतरत्नभूमिका कल्पवृक्षवनवाटिसङ्कुले ।**
नीपवाटिमणिमण्डपेऽरुणे शङ्कराङ्कृतपीठिकामणौ
आदिपञ्चशिवमञ्चकेपरे चन्द्रभानुशतकोटिभासुरे
कादि हादि मनुरूपिणीमहं भावयामि परदेवतां शिवाम्।।

विवरण पूर्व में दिया है कृपया विचारशील महानुभाव चिन्तन करें।

श्री शङ्कराचार्योविजयतेतराम्

श्री द्वारकाधीश

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी

श्री चन्द्रमौलीश्वर

स्वामी श्री कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज

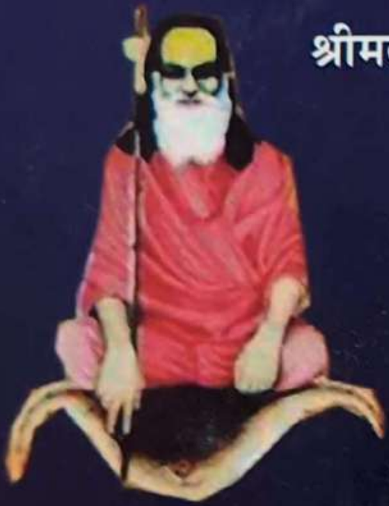

स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज

धर्मसम्राट स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
(श्रीविद्यामन्त्रभाष्य के प्रणेता)

अनन्तश्रीविभूषित
ज्योतिष्पीठाधीश्वर
एवं
द्वारकाशारदापीठाधीश्वर

जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी
श्री स्वरूपानन्द सरस्वती
जी महाराज